हिन्दी-गौरव-ग्रन्थमाला—३२वाँ ग्रन्थ

वीर-सतसई

रचयिता

वियोगी हरि

प्रकाशक

गाँधी-हिन्दी-पुस्तक-भण्डार

प्रयाग

प्रथम संस्करण २००० | विजया-दशमी संवत् १९८४ | मूल्य २।)

जात भलैं कुरुराज पै,

धारि दूत-वर वेश ।

जइयौ भूलि न कहुँ वहाँ,

केशव ! द्रौपदि-केश ॥

विषय-सूची

पहला शतक

[पृष्ठ १ से १५ तक]

दूसरा शतक

[पृष्ठ १७ से ३१ तक]

तीसरा शतक

[पृष्ठ ३३ से ४८ तक]

चौथा शतक

[पृष्ठ ४९ से ६६ तक]

पाँचवाँ शतक

[पृष्ठ ६७ से ८२ तक]

छठा शतक

[पृष्ठ ८३ से ९६ तक]

सातवां शतक

[पृष्ठ ९७ से १०९ तक]

श्रीहरिः

वीर-सतसई

पहला शतक

मंगलाचरण

जयतु कंस-करि-केहरी ! मधु-रिपु ! केशी-काल ।
कालिय-मद-मर्दन ! हरे ! केशव ! कृष्ण कृपाल ॥ १ ॥
गिरिवरु जापै धारिकैं राखी ब्रज-जन-लाज ।
ताही छिँगुनी कौ हमैं बल बानो, यदुराज !॥ २ ॥
काटौ कठिन कलेसु मो मोह-मार-मद वक्र ।
मथन-मत्त-शिशुपाल-करि केहरि केशव-चक्र ॥ ३ ॥
रह्यौ उरझि रथ-चक्र जो धावत भीषम-ओर ।
कब गहिहौं रणछोर के वा पटुका कौ छोर ॥ ४ ॥

वीर रस-प्राधान्य

आदि, मध्य, अवसानहूँ जामें उदित उछाह ।
सुरस बीर इकरस सदा सुभग सर्वरस-नाह ॥ ५ ॥

परिनामहुँ जो देतु है लोकोत्तर आनन्द ।
सुरस बीर रस-राजु सो, सहित उछाह अमन्द ॥ ६ ॥

बीर-स्थायी भावसों सरस सर्वरस आहिं ।
नीकेहूँ फीके सबै बिनु जाके जग माहिं ॥ ७ ॥

वीररसानन्यता

छाँड़ि बीर रसु अब हमैं नहिं भावतु रस आन ।
ध्यावतु सावन-आँधरो हरो-हरो हि जहान ॥ ८ ॥

री रसना ! बस ना कछू, अब तोपै रस-तीर ।
चाखति सरस सिंगारु तजि क्यों नीरस रसु बीर ? ॥ ९ ॥

कहा करौं माधुर्य लै मृदुल मंजु बिनु ओज ।
दिपैं न ज्योति-बिकास बिनु सुंदर नैन-सरोज ॥ १० ॥

शूर वीर

खंड-खंड ह्वै जाय बरु, देतु न पाछें पेँड़ ।
लरत सूरमा खेत की मरत न छाँड़तु मेँड़ ॥ ११ ॥

सहजसूर रण-चूर-उर चाहिय चातक-चाह* ।
चाहिय हारिल-हठ† वहै, चाहिय सती-उमाह ॥ १२ ॥

खल-खंडन, मंडन-सुजन, सरल, सुहृद, सविवेक ।
गुण-गँभीर, रण-सूरमा मिलतु लाख में एक ॥ १३ ॥

खल-घातक, [illegible]-सुजन, सुहृद, सदय, गंभीर ।
कहूँ एक सत लाख में 'प्रकृत सूर' रण-धीर ॥ १४ ॥

मुहँमाँगे रण-सूरमा देतु दान परहेतु ।
सीस-दान हूँ देतु, पै पीठि-दान नहिँ देतु ॥ १५ ॥

कहत महादानी उन्हें चाटुकार मतिकूर ।
पीठिहुँ कौ नहिँ देत जे कृपण दान रण-सूर ॥ १६ ॥

कहतु कौन रणमें तुम्हैं धीर-बीर-सरदार ।
लखि रिपु बिनु हथयार जो देत डारि हथयार ॥ १७ ॥

आजु कहूँ तौ कल कहूँ, नाहिँ एक विश्राम ।
करतु सिंह-सम सूरमा ठौर-ठौर निज ठाम ॥ १८ ॥

---

* रटत-रटत रसना लटी, तृषा सूखि गे अंग ।
'तुलसी' चातक-प्रेम कौ नितनूतन रुचि रंग ॥
'तुलसी' चातक देत सिख, सुतहि बार ही बार ।
तात, न तर्पन कीजिये बिना बारि-धर-धार ॥

—तुलसीदास

† गही टेक छूटै नहीं, कोटिन करौ उपाय ।
हारिल धर पग ना धरै, उड़त फिरत मरि जाय ॥

—अज्ञात कवि

तंत न तोरत अंतलौं, बचन निबाहत सूर ।
कहा प्रतिज्ञा पालिहैं कपटा कादर क्रूर ॥ १९ ॥

बचन-सूर केते मिले, करतब-कोरे क्रूर ।
साँचो तो कहुँ लाख में लख्यौ एक रण-सूर ॥ २० ॥

दया-वीर

किधौं त्याग-गिरि-शृङ्ग, कै भाव-जान्हवी-कूल ।
किधौं करुणा-रस-सिंधु यह दया-बीर मुद-मूल ॥ २१ ॥

दया-धर्म जांन्यौ तुहीँ, सब धर्मनु कौ सार ।
नृप शिबि ! तेरे दान पै बलि हूँ बलि सौ बार ॥ २२ ॥

तूँहीँ या नर-देह कौ, बलि, पारखी अनूप ।
दया-खड्ग-मरमी तुहीँ, दया-सूर शिबि भूप ! ॥ २३ ॥

दल्यौ अहिंसा-अस्त्र लै दनुज दुःख करि युद्ध ।
अजय-मोह-गज-केसरी, जयतु तथागत बुद्ध ॥ २४ ॥

रण-थल मूर्छित स्वामि के लीने प्राण बचाय ।
गीधनु निज तनु-माँसु दै, धन्य संजमाराय* ॥ २५ ॥

---

* संयमराय महाराज पृथ्वीराज का एक शूर सामंत था । एक बार युद्ध-स्थल पर महाराज पृथ्वीराज घोड़े पर से मूर्च्छित हो गिर पड़े । पासही संयमराय भी आहत पड़ा था । यह समझ कर कि महाराज मर गये हैं, गीध उन पर मँड़राने लगे । दो-एक ने तो चोंच भी चला दी । संयमराय से यह न देखा गया । उठने की चेष्टा की, पर उठ न सका । उधर ज़रा ही देर करता है, तो गीध महाराज को खाये जाते हैं । सामन्त ने अपने शरीर से मांस काट-काट कर फेकना शुरू किया । गीधों

फैंकि-फैंकि निज माँसु लिय संभरि-राय* बचाय।
है तूँ शिबि तें घटि कहा, सुभट संजमाराय ! ॥ २६ ॥

सत्य-वीर

सुंदर सत्य-सरोजु सुचि बिगस्यौ धर्म-तड़ाग।
सुरभित चहुँ हरिचंद कौ जुग-जुग पुन्य-पराग ॥ २७ ॥
मृतरोहित†-पट-दानु लै धार्‌यौ धर्म अमन्द।
खड्ग-धार-ब्रत-धीर, धनि, सत्य-बीर हरिचन्द ॥ २८ ॥
फूँकन देतु न मृत सुवनु, माँगतु तिय-तनु-चीर।
निरखि नृपति-सत-धर्म-धृति धृति हू भई अधीर ॥ २९ ॥
पद्मा-पति-पटपीत क्यों खस्यौ नीर-निधि-तीर ?।
पतिहिं फारि शैव्या दियौ निज-अँग-आधो चीर ॥ ३० ॥
बैंचि प्रियै, प्रियपूतहूँ भयौ डोम-गृह-दास।
सत्यसंध हरिचंद ! तूँ सहज सुसत्य-प्रकास‡ ॥ ३१ ॥

को और क्या चाहिए। आनन्द से मांस खाने लगे। थोड़ी देर बाद महाराज होश में आये। आँख खोलते ही स्वामि-भक्त संयमराय की यह लीला देखी। पर, वहाँ सामंत मरण-प्राय हो गया था। महाराज उसकी स्वामि-भक्ति देख कर गद्‌गद हो गये। किसी तरह उठकर गीधों को भगाने गये, पर सामंत तो स्वर्ग को सिधार चुका था।

* महाराज पृथ्वीराज।

† रोहिताश्व।

‡ बैंचि देह दारा सुवन, होय दासहू मन्द।
रखिहै निज बच सत्य करि अभिमानी हरिचन्द ॥ —भारतेन्दु हरिश्चन्द्र।

जौ न जन्म हरिचन्द कौ होतो या जग माँह ।
जुग-जुग रहति असत्य की अमिट अँधेरी छाँह ॥ ३२ ॥

इत गाँधी*, उत सत्य दोउ मिले परस्पर चाहि ।
यह छाँड़तु नहिं ताहि, त्यौं वह छाँड़तु नहिं याहि ॥ ३३ ॥

धनि, तेरी तप-धीरता, धनि, गुण-गण-गंभीर !
या कलि में गाँधी ! तुही इक सत्याग्रह-बीर ॥ ३४ ॥

नहिं बिचल्यौ सतपंथ तें सहि असह्य दुख-द्वंद ।
कलि में गाँधी-रूप ह्वै प्रगट्यौ पुनि हरिचंद ॥ ३५ ॥

धर्म-वीर

धन्य ओरछो, जहँ भयौ धर्म-बीर हरदौल† ।
दिये प्राण सत-धर्म पै पालि बीर-ब्रत नौल ॥ ३६ ॥

---

* "वर्तमान काल में एकमात्र गांधी ही ईश्वर के सामने सत्य के प्रतिनिधि हैं।"

—काउण्ट ल्यू टाल्सटॉय ।

"गांधीजी के सामने जाने पर मनुष्य यही समझता है कि मैं किसी बड़े महान् नैतिक देवता के सामने खड़ा हूँ, जिसकी आत्मा एक शान्त और स्वच्छ झील के समान है, जिस में सत्य का स्पष्ट प्रतिबिम्ब दिखाई पड़ता है।"

—एच० एस० एल० पोलक ।

"निस्संदेह गांधीजी उन्हीं तत्वों से बने हैं, जिन तत्वों से बड़े-बड़े बहादुर और शहीद बनते हैं। बल्कि इससे भी बढ़ कर एक और गुण उनमें यह है कि वे अपने विलक्षण आत्मिक अथवा सत्य-बल से अपने आस-पास के साधारण मनुष्यों को भी बहादुर और शहीद बना देते हैं।"

—गोपाल कृष्ण गोखले ।

† बुन्देलखंड में ओड़छा एक प्राचीन राज्य है। परमप्रतापी बुन्देलों का सबसे बड़ा और प्रतिष्ठित राज्य यही है। महाराज मधुकर शाह के पुत्र ओड़छाधीश जुझारसिंहजी प्रायः दिल्ली में रहा करते

धर्मबीर हरदौलजू ! अजहुँ तुम्हारे गीत ।
ह्याँ घर-घर तिय गावतीं समुझि सनातन रीत ॥ ३७ ॥
हँसत-हँसत निज धर्म पै दियौ जु सीसु चढ़ाय ।
धर्म-समर में मरि भयो अमर हकीकतराय ॥ ३८ ॥
दयानंद ! आरज-पथिक* ! यति-वर श्रद्धानंद† !
जगिहै तुह्मरे रुधिर तें जुग-जुग धर्म अमंद ॥ ३९ ॥

थे । राज्य-प्रबन्ध का भार, महाराज की अनुपस्थिति में, उनके भाई कुमार हरदौल के सिर पर रहता था । राज्य के अधिकारी न्यायशील कुमार पर जला करते और उनके हाथ से राज्य-प्रबन्ध छीनने की ताक में रहते । राजकुमार पर राजमहिषी का पुत्रवत् वात्सल्य स्नेह था । कुमार भी उन्हें मातृवत् मानते थे । देवर-भौजाई का यह पवित्र सम्बन्ध दुष्ट ईर्ष्यालु कर्मचारियों से न देखा गया । षड्यंत्र रच कर उन्होंने महाराज को लिखा कि कुमार और महारानी के बीच में अश्लील सम्बन्ध है । राजा के शरीर में आग लग गई । अपनी पत्नी के सतीत्व में उन्हें सन्देह हो गया । एक दिन रानी से, महल में जाकर, बोले कि यदि तुम दोनों में विशुद्ध प्रेम है तो अपने हाथ से हरदौल को विष दे दो । राज-महिषी ने प्राणान्त पीड़ा का अनुभव करते हुए भी धर्मरक्षणार्थ पति-देवता की बात मान ली । कुमार को निमन्त्रण दिया गया । भौजाई अपने पुत्रवत् देवर को डबडबाती आँखों से निहारती हुई परोसने लगी । पहले तो छिपाया, पर कुमार के बहुत आग्रह करने पर रानी को सारा रहस्य खोलना ही पड़ा । हरदौल ने हँसकर कहा कि, माता ! आप क्यों दुःख करती हैं ? यदि मेरी हत्या से पितृ-तुल्य पूज्य भ्राता का सन्देह दूर होता है, आपके सतीत्व की परीक्षा और मेरे धर्म की रक्षा होती है तो मेरा मरण धन्य है । यह कहकर रानी के हाथ से विष-मिश्रित दूध छीन कर धर्म-वीर हरदौल हँसते-हँसते पी गये, और श्रीरामचन्द्रजी के मंदिर के सामने एक चौकी पर बैठ कर ध्यान करते हुए उन्होंने स्वर्गारोहण किया । कहते हैं, उनकी थाली का ज़हर मिला हुआ भोजन पा कर उनके कई नौकर, घोड़े और हाथी भी उन्हीं के साथ स्वर्गस्थ हुए । हरदौल इस धर्म-बलि के पश्चात् बहुत प्रसिद्ध हुए । समस्त बुन्देलखंड में उनके नाम के चौतरे अद्यापि बने हुए हैं । आज भी प्रत्येक मांगलिक अवसर पर विघ्न-निवारणार्थ पहले 'हरदौल लाला' के ही गीत गाये जाते हैं ।

* आर्य मुसाफ़िर पंडित लेखराम, जिन्हें एक कठोर-हृदय मुसलमान ने छुरी घुसेड़ कर मार डाला था ।

† धर्मवीर स्वामी श्रद्धानन्द, जिन्हें हाल ही में दिल्ली के एक धर्मोन्मत्त अब्दुर्रसीद नामक

विरह-वीर*

तजि सरबसु रस-बसु कियौ गीता-गुरु गोपाल ।
भाव-मौन-धुज धन्य वै बिरह-बीर ब्रज-बाल ॥ ४० ॥

साध्यौ सहज सुप्रेम-ब्रत चढ़ि खाँड़े की धार ।
बिरह-बीर ब्रज-बाल हीँ रसिक-मेंड़-रखवार ॥ ४१ ॥

†धन्य, बीर ब्रज-गोपिका, तजी न रसकी मेंड़ ।
हेत-खेत तें अंतलौँ दियौ न पाछेँ पेंड़ ॥ ४२ ॥

दान-वीर

किधौँ उच्च हिम-शृङ्ग-वर, किधौँ जलधि गंभीर ।
किधौँ अटल ध्रुव-धाम, कै दान-बीर मति-धीर ॥ ४३ ॥

सुरतरु लै कीजै कहा, अरु चिन्तामणि-ढेरु ।
इक दधीचि की अस्थि पै वारिय कोटि सुमेरु ॥ ४४ ॥

व्यक्ति ने पिस्तौल चला कर मारा है ।

* साहित्यिकों ने इस नाम का वीरों में कोई विभाग नहीं किया है। पर वीररस का स्थायी भाव 'उत्साह' विशुद्ध विरह में, अच्छी मात्रा में, पाया जाता है। इसी से हमने अद्वितीय विरहिणी ब्रजांगनाओं को 'विरह-वीर' नाम के नये वीर-विभाग में स्थान देने की धृष्टता की है।

† गोपिन की सरि कोऊ नाहीं ।
जिन तृन सम कुल-लाज-निगड़ सब तोर्‌यौ हरि-रस माहीं ॥
जिन निजबस कीने नँदनंदन विहरीं दै गलबाहीं ।
सब संतन के सीस रहौ उन चरन-छत्र की छाहीं ॥

—भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ।

चिंतामनि सौ लख कहा, कोटिन कनक-पहाड़ ।
त्रिभुवन माहिँ सराहियै ऋषि दधीचि कौ हाड़ ॥ ४५ ॥

शूर और कादर

सदय, विवेकी, सत्यव्रत, सुहृद लेखियतु सूर ।
अविवेकी, क्रोधी, कुटिल, कादर कहियतु क्रूर ॥ ४६ ॥

कूकरु उदरु खलायकैं, घर-घर चाटतु चून ।
रँगे रहत सद खून सों नित नाहर-नाखून ॥ ४७ ॥

सूर-चाह-अनचाहहूँ देखिय अगम - अथाह ।
कहा क्रूर-कादरनु की चाह और अनचाह ॥ ४८ ॥

करि कादर सों मित्रता कहा लाभ है, मीत !
सत्रुताहु रण-सूर-प्रति मंगल-मूर्ति पुनीत ॥ ४९ ॥

कहतु कौन कायर तुम्हैं, बल-सायर ! रण माहिँ ।
भभरि भाजिबो पीठि दै सब के बस कौ नाहिँ ॥ ५० ॥

मति मन-मानिक सौंपियौ, कुटिल-कादरनु हाथ ।
हैं वै ही सतजौहरी, नहिँ जिन धर पै माथ ॥ ५१ ॥

कादर बीरनु संग मिलि, भलैं अलापहिँ राग ।
छिपत न अंत बसंत में, कैसेहुँ कोयल काग ॥ ५२ ॥

बृथा उभय-निरधार में बिनत-उधेरत बेद ।
खुलि जैहै वा दिन सबै, नकल-असल कौ भेद ॥ ५३ ॥

युद्ध वीर

केसरिया बागो पहिरि, कर कंकण, उर माल ।
रण-दूलह ! बरि लाइयौ दुलहिन बिजय-सुबाल ॥ ५४ ॥

औघट घाट कृपाण कौ, समर-धार बिनु पार ।
सनमुख जे उतरे, तरे, परे बिमुख मँझधार* ॥ ५५ ॥

पैरि पार असि-धार कै, नाखि युद्ध-नद-भीर ।
भेदि भानु-मंडलहिँ अब, चल्यौ कहाँ रण-धीर ? ॥ ५६ ॥

डीठि-बिमुख ह्वै ढीठ वै गिनत न ईठ-अनीठ ।
घालत दै-दै पीठि सर, तानि-तानि सर-पीठ ॥ ५७ ॥

धनि धनि, सो सुकृती ब्रती, सूर-सूर, सतसंध ।
खड्ग खोलि खुलि खेत पै खेलतु जासु कबंध ॥ ५८ ॥

प्रतिपालक निज पैज के, खल-घालक रिपु-जैत ।
बल-बाँके बानैतहीं होत बिसद बिरुदैत ॥ ५९ ॥

लरतु काल सों लाख में कोइ माइ कौ लाल ।
कहु, केते करबाल कों करत कंठ-कलमाल ॥ ६० ॥

---

*तंत्री-नाद, कवित्त-रस, सरस राग, रति-रंग ।
अनबूड़े बूड़े तिरे, जे बूड़े सब अंग ॥

—बिहारी

कहाँ सूर समरत्थ, जो समर-दानु बढ़ि लेतु ।
कौन काल-करबालकों किलकि कलेऊ देतु ॥ ६१ ॥

धन्य, भीम ! रण-धीर तूँ, धरि अरि-छाती पाव ।
भरि अँजुरिनि शोणितु पियौ, इन मूँछनि दै ताव ॥ ६२ ॥

धन्य, कर्ण ! रिपु-रक्त सों दियौ पूरि रण-कुण्ड ।
करि कंदुक अति चाव सों, उछरि उछारे मुण्ड ॥ ६३ ॥

सहज बजावनु गाल त्यों, सहज फुलावनु गाल ।
काल-गाल में अरि-दलै कठिन गेरिबो हाल ॥ ६४ ॥

प्राण हथेरी पर धरें, कियें ओज-मद-पान ।
तबर तीर तरबार लै चले जूझिबे ज्वान ॥ ६५ ॥

रण-सुभट्ट वै भुट्ट-लौं गहि असि कट्टत मुण्ड ।
उठि कबंध जुट्टत कहूँ, कहुँ लुट्टत रिपु-रुण्ड ॥ ६६ ॥

शूर-सुपूत

सीस हथेरी पर धरें, ठोंकत भुज मजबूत ।
छिति, छत्रानी-गर्भ तें, जनमतु सूर सुपूत ॥ ६७ ॥

कादर भये न सूर-सुत, करि देख्यौ निरधार ।
नाँहँ सिंहिनि के गर्भ तें, उपजे कबहुँ सियार ॥ ६८ ॥

सूर-सुतहिँ जग जन्म-सँग, सहज जंग-जागीर ।
समर-मरण मंसब मिल्यौ, अरु खिताब रण-धीर ॥ ६९ ॥

क्षत्रिय-निरूपण

'छत्रिय छत्रिय' कहे तें, छत्रिय होय न कोय ।
सीसु चढ़ावै खड्ग पै, छत्रिय सोई होय ॥ ७० ॥

लावै बाजी प्राण की, चढ़ि कृपाण की धार ।
सोई छत्रिय-धर्म की मेंड़ रखावनहार ॥ ७१ ॥

जोरि नाम सँग 'सिंह' पदु, कियौ सिंह बदनाम ।
ह्वै है क्योंकरि सिंह यौं, करि शृगाल के काम ॥ ७२ ॥

मंगल प्रयाण

पारथ-सारथि कौ हियँ रहौ खचित वह ध्यान ।
हँसत-हँसत बस बीर-लौं करियौ, प्रान ! प्रयान ॥ ७३ ॥

वह दिनु, वह छिनु, वह घरी पुनि पुनि आवति नाहिँ ।
हिलुरि-हिलुरि जब हंस ए समर माहिँ अवगाहिँ ॥ ७४ ॥

दुवन-दर्प दरि, बिदुरि अरि, राखि टेक-अभिमान ।
निकसत हँसि घमसान में बड़भागिनु के प्रान ॥ ७५ ॥

लोहित-लथपथ देखिकैं, खंड-खंड तन-त्रान ।
निकसत हुलसत युद्ध में बड़भागिनु के प्रान ॥ ७६ ॥

कादर तौ जीवित मरत दिन में बार हजार ।
प्रान-पखेरू बीर के उड़त एकही बार ॥ ७७ ॥

श्वान-मीच मरिहै कहूँ, धिक, रण-कादर नीच !।
पुण्य-प्रतापनु पाइयतु शुद्ध युद्ध-थल-मीच ॥ ७८ ॥

पवित्र तीर्थ

अरे, फिरत कत, बावरे ! भटकत तीरथ भूरि ।
अजौं न धारत सीस पै सहज सूर-पग-धूरि ॥ ७९ ॥

बसत सदा ता भूमि पै तीरथ लाख-करोर ।
लरत-मरत जहँ बाँकुरे बिरुझि बीर बरजोर ॥ ८० ॥

जगी जोति जहँ जूझ की, खगी खड्ग खुलि झूमि ।
रँगी रुधिर सों धूरि, सो धन्य धन्य रण-भूमि ॥ ८१ ॥

तहँ पुष्कर, तहँ सुरसरी, तहँ तीरथ, तप, याग ।
उठ्यौ सुबीर-कबंध जहँ, तहँई पुण्य प्रयाग ॥ ८२ ॥

संगर-सौंहैं सूर जहँ, भये भिरत चकचूरि ।
बड़भागन तें मिलति वा रण-आँगन की धूरि ॥ ८३ ॥

कै कृपाण की धार, कै अनल-कुंड कौ ठाट।
एही बीर-बधून के, द्वै अन्हान के घाट ॥ ८४ ॥

अनल-कुंड, असि-धार, कै रकत-रँग्यौ रण-खेत ।
त्रय तीरथ तारण-तरण, छिति, छत्रिय-तिय-हेत ॥ ८५ ॥

रण-बेला सतपर्व-सी अभिमत-फल-दातार ।
सहस जान्हवी-धार-लौं सुभट हेतु असि-धार ॥ ८६ ॥

सुभट-सीस-सोनित-सनी समर-भूमि ! धनि-धन्य !
नहिँ तो सम तारण-तरण त्रिभुवन तीरथ अन्य ॥ ८७ ॥

नमो-नमो कुरु-खेत ! तुव महिमा अकथ अनूप ।
कण-कण तेरो लेखियतु सहस-तीर्थ-प्रतिरूप ॥ ८८ ॥

शीर्ष-दान

जे जन लोभी सीस के, ते अधीन दिन-दीन ।
सीसु चढ़ाये बिनु भयौ, कहौ, कौन स्वाधीन ? ॥ ८९ ॥

एक ओर स्वाधीनता, सीसु दूसरी ओर ।
जो दो में भावै तुम्हैं, भरि सो लेहु अँकोर ॥ ९० ॥

कोटिन जतन करौ चहै, रचि-पचि लाख बरीस ।
मिली न कहुँ स्वाधीनता, बिनु सौंपें निज सीस ॥ ९१ ॥

चाहौ जो स्वाधीनता, सुनौ मन्त्र मन लाय ।
बलि-बेदी पै निज करनि, निज सिरु देहु चढ़ाय ॥ ९२ ॥

दियौ दानु जिन सीस कौ, बहुत न ते ब्रत-बीर ।
मुहुँ लगाय केते, कहौ, पियत सिंहिनी-छीर ? ॥ ९३ ॥

कोटिनु मधि कोऊ कहूँ कुल-दीपक इक होतु ।
नेह-सहित निज सीसु दै दस दिसि करतु उदोतु ॥ ९४ ॥
सौंप्यौ स्वामिहिं कोउ जन, कोउ धन, हय, गय, ठौरु।
पै वह सहजैं सौंपि सिरु, भयौ सबनु सिरमौरु ॥ ९५ ॥
देत अजा-बलि देव कों अधम अधर्मी आज ।
धन्य धन्य, जिन सीस निज, दियौ ईस-बलि-काज ॥ ९६ ॥

वीर-किसान

लै असि-हलु जोती मही, बोयौ सीस-सुधान ।
करि सुचि खेती जसु लुन्यौ, धनि रजपूत-किसान ॥ ९७ ॥
बोय सीसु सींच्यौ सदा हृदय-रक्त रण-खेत ।
बीर-कृषक कीरति लही, करी मही जस-सेत ॥ ९८ ॥

वीर वैश्य

धन्य वैश्य-वर वीर, जे मेलि रुंड रण-कुंड ।
खड्ग-तुला पै मत्त ह्वै रखि तोले खल-मुंड ॥ ९९ ॥
धन्य बनिक, जो लै तुला, बैठ्यो समर-बजार ।
अरि-मुंडनु कौ धर्मसों कियौ बनिज-ब्यौपार ॥ १०० ॥

दूसरा शतक

विजयराघव-ध्यान

मौलि-जटा, धनु-बान कर, मुख प्रसेदु, अँग श्रान्त ।
बसौ बिजयराघव हियेँ, कियेँ रूप रण-क्रान्त* ॥ १ ॥

कलित कंध धनु, तून कटि, कर सर, सरजू-तीर ।
सँग सखानु बानिक यहै, बसौ दृगनि रघुबीर† ॥ २ ॥

---

*सिर जटा-मुकुट प्रसून बिच-बिच अति मनोहर राजहीं ।
जनु नीलगिरि पर तड़ित पटल समेत उडुगन भ्राजहीं ॥
भुजदंड सर कोदंड फेरत रुधिर-कन तन अति बने ।
जनु रायमुनी तमाल पर बैठीं बिपुल सुख आपने ॥

—तुलसी

†निम्नलिखित दोहे के साँचे में—

सीस मुकुट, कटि काछनी, कर मुरली, उर माल ।
या बानिक मो मन बसौ, सदा बिहारीलाल ॥

यह ध्यान तो गोसाईंजी से ही अंकित करते बना है—

बिहरत अवध-बीथिन राम ।
संग अनुज अनेक सिसु, नवनील नीरद स्याम ॥
तरुन अरुन-सरोज-पद बनी कनकमय पद-त्रान ।
पीतपट कटि तूनबर, कर ललित लघु धनु-बान ॥
लोचननि को लहत फल छबि निरखि पुर-नर-नारि ।
बसत तुलसीदास-उर अवधेस के सुत चारि ॥

—तुलसी

जटा-मुकुट सिर, चाप कर, कलित कलेवर स्याम ।
दसमुख-करि-केहरि रमौ दृगनि राम अभिराम ॥ ३ ॥

रहौ पूरि श्रवननि सदा, त्रिजग-प्रकंपनहार ।
बंक-लंक-धर-शंक-कर युगल-धनुष-टंकार ॥ ४ ॥

कवि-कर्त्तव्य

लै बल-बिक्रम-बीन, कवि ! किन छेड़त वह तान ।
उठैं डोलि जेहिं सुनतहीं धरा, मेरु, ससि, भान ॥ ५ ॥

लै निज तंत्री छेड़िदै, कवि ! वह राग अभंग ।
उठैं धरा तें ओज की नभ लगि तुंग तरंग* ॥ ६ ॥

---

*कवि ! तूँ क्यों न बीर रसु गावै ?
उथल-पुथल करि अखिल लोक में व्यापक गान सुनावै ?
जो या मद-बिभोर बानी बल-विक्रम-सर अन्हवावै ।
तौ तूँ अनायासहीं कोटिन तीरथ कौ फलु पावै ॥
कब तें या कल कुसुम-कुञ्ज में रमि रमनी-छवि ध्यावै ?
कंकण-किंकिणि-झनक सुनत जहँ, तहँ प्रमत्त ह्वै धावै ॥
अजहूँ किन गम्भीर नादु कै शक्ति-मूर्ति प्रगटावै ?
किन नख-सिख-कुच-कटि-वर्नन की कारिख धोय मिटावै ?
सुचि पत्रावलि मलिन मसी सों काहे, निलज ! नसावै !
ओज-जान्हवी-जल तें ताकौ किन अँगरागु करावै ?
लोक-प्रकंपन शब्द-शक्ति सों जो पै जगत जगावै ।
कवि ! तबहीं तूँ या वसुधा पै, साँचो सुकवि कहावै ॥

[वीर वाणी]

वीर कवि

हिन्दू-कवि, हिन्दुवान-कवि, हिन्दी-कवि रसकन्द ।
सुकवि, महाकवि, सिद्धकवि, धन्य धन्य, कवि चन्द ॥ ७ ॥

भयौ उदित हिन्दुवान-नभ चारुचन्द कविचन्द ।
रही बगरि चहुँ जोन्ह-सी रचना रुचिर अमन्द ॥ ८ ॥

रचि रासो* रस-रासि, अति उद्भट काव्य सुछन्द ।
पृथीराजचौहान-जसु अजर अमर किय चन्द ॥ ९ ॥

फिरदौसी† किन जाय दुरि देखतहीं कविचन्द ।
जासु प्रभा लखि परि गयौ कवि होमर‡ हूँ मन्द ॥ १० ॥

अब नख-सिख-सिंगार के पढ़त कवित कमनीय ।
आजु लाल-भूषण-सरिस रहे न कवि जातीय ॥ ११ ॥

सिवा-सुजस-सरसिज-सुरस-मधुकर मत्त अनन्य ।
रस-भूषण-भूषण, सुकवि-भूषण, भूषण धन्य ॥ १२ ॥

कविभूषण सों सरि, कहौ, करिहै को मति-अंध ।
जासु पालकी में दियौ छत्रसालु निज कंध§ ॥ १३ ॥

---

*पृथ्वीराज-रासो ।

†फ़ारसी के सुप्रसिद्ध महाकाव्य 'शाहनामा' का रचयिता ।

‡जगद्विख्यात 'इलियट' महाकाव्य का प्रणेता ।

§ एकबार कविभूषण शिवाजी के पौत्र साहूजी के यहाँ भलीभाँति सम्मानित हो पन्ना-नरेश छत्रसाल के यहाँ आये । वहाँ भी कवि का यथेष्ट सत्कार किया गया । कवि की बिदाई करते समय महाराज ने उनकी पालकी का डंडा खुद अपने कंधे पर रख लिया । भूषण यह देख गद्गद हो गये । पालकी से कूद कर कहने लगे, बस, महाराज !

रिपुगरा सुनि भूषरा-कवितु क्यों न होयँ सर-विद्ध ।
जाकी रसना पै सदा रहति चंडिका सिद्ध ॥ १४ ॥
किधौं इन्द्र कौ बज्र, कै प्रलय-कृसानु अमन्द ।
किधौं रुद्र-रग-चंड-चखु कविभूषरा कौ छन्द ॥ १५ ॥
कविभूषरा सिवराज की जिमि गूँथी गुन-माल ।
तिमि चंपत-सुत कौ चरितु कियचित्रित कविलाल* ॥ १६ ॥
हेलाहीं कटवाय रिपु, रग-बेला ह्वै ढाल ।
रह्यो बुन्देला बीर† सँग अलबेला कविलाल ॥ १७ ॥
नितप्रति छत्र-प्रकाश‡ तें सुकविलाल-कृत छन्द ।
पढ़ियौ चंपत§-बंसधर ! तुम्हैं खड़ग-सौगन्द ॥ १८ ॥

राजत अखंड तेज, छाजत सुजसु, बड़ो ,
गाजत गयंद दिग्गजन हिय-साल को ।
जाहि के प्रताप सों मलीन आफ़ताप होत ,
ताप तजि दुज्जन करत बहु ख्याल को ॥
साज सजि गज तुरी पैदर कतार दीनें ,
भूषन भनत, ऐसो दीन-प्रतिपाल को ।
और राव राजा एक मन में न ल्याऊँ अब ,
साहू कों सराहौं कै सराहौं छत्रसाल को ॥

(छत्रसाल-दशक)

* कविवर गोरेलाल । यह एक साथ ही महाराज का रसोइया, सामंत और कवि था ।

† महाराज छत्रसाल ।

‡ कविवर गोरेलाल का रचा हुआ एक सुन्दर वीररसात्मक काव्य । खेद है कि यह काव्य अपूर्णही प्राप्त हुआ है । इसे काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा ने संशोधित करा के प्रकाशित किया है । हिन्दी-साहित्य में वीररस का ऐसा उत्तम ऐतिहासिक काव्य कदाचित् ही कोई और हो ।

§ महाराज छत्रसाल के पिता चंपतराय ।

ब्रज-जाटनु* की रण-कथा गाय सुजान-चरित्र† ।
भूषण-लौं, सूदन ! तुहूँ रसना कीन पवित्र ॥ १९ ॥
कादरता-सूदन अहैं, कविसूदन ! तुव छन्द ।
फरकत भट-भुजदंड, सुनि धरकत कादर मन्द ॥ २० ॥

केसरी

एकछत्र बन कौ अधिप पंचाननहीं एक ।
गज-शोणित सों आपुहीं कियौ राज-अभिषेक ॥ २१ ॥
काँपतु कोपित केहरी मुहुँ बायें बिकराल ।
रहे धँधकि अंगार कै प्रलयकाल के लाल ?॥ २२ ॥
छिन्न-भिन्न ह्वै उड़ति क्यों मद-भौंरनु की भीर ?
दार्‌यौ कुंभ करीन्द्र कौ कहूँ केहरी बीर ॥ २३ ॥
दंति-कुंभ-शोणित-सनी लसति सिंह-दृढ़-डाढ़ ।
मनु मंगल ससि-अंग कों दिय आलिंगनु गाढ़ ॥ २४ ॥
अहे मधुप ! गज-गंड-मदु पीजौ सोचि-बिचारि ।
छिनमेंहीं या कुंभ कों दैहै सिंह बिदारि ॥ २५ ॥

---

* भरतपुर राज्य के वीर जाटों से अभिप्राय है ।

† सुकवि-सूदन-रचित एक सुन्दर युद्ध-काव्य । इस में भरतपुर के सुप्रसिद्ध वीर-वर महाराज सूरजमल, उपनाम सुजानसिंह, की युद्ध-गाथा ओजस्वी पद्यों में चित्रित की गयी है ।

बारबार अँगराय क्यों सिंह जँभाई लेत ?
मद-माते गज-यूथ कों पुनि-पुनि करतु सचेत ॥ २६ ॥

भाजि भाजि, गजराय ! अब, बारि-बिहार बिहाय ।
गरभ गिराय मृगीन के, गयौ आय बनराय ॥ २७ ॥

कमल-केलि करिनीन सँग, करत कहा, करिराज !
गिरितें गाजत गाज-लौं रह्यौ उतरि मृगराज ॥ २८ ॥

झपटि सिंह गज-कुंभ ज्यौं दपटि बिदार्यौ धाय ।
रकत-रँगी मुकता-कनी रहीं सुकेसर छाय ॥ २९ ॥

पराधीन सबु देखियतु, बल-बीरज तें हीन ।
या कानन में, केसरी ! इक तूँहीं स्वाधीन ॥ ३० ॥

नहिँ पावसु, नहिँ घन-घटा, भई कितै यह घोर ?
करतु मत्त मृगराजु कहुँ, बिसें बीस बन रोर ॥ ३१ ॥

यौं मति कीजौ रोर अब, घन ! केहरि-लौं आय ।
या गयन्दिनी कौ अरे ! गरभु न कहुँ गिरि जाय ॥ ३२ ॥

वीरता और कामान्धता

जहँ नृत्यति नित चंडिका तांडव-नृत्य प्रचंड ।
सुमन-बान तहँ काम के होत आपु सतखंड ॥ ३३ ॥

अट्टहास करि कालिका जित क्रीड़ति बिनुसंक ।
कुसुम-बान किमि बेधिहै तित कुसुमायुध रंक ॥ ३४ ॥

जा तनु-बारिधि में सदा खेलति अतनु-तरंग ।
उमगैगी क्योंकरि, कहौ, ता मधि युद्ध-उमंग ।। ३५ ।।

वीर-बाहु

खल-खंडन, मंडन-सुजन, अरि-बिहंड, बरिबंड ।
सोहत सिंधुर-सुंड-से सुभट-चंड-भुजदंड ।। ३६ ।।

कटि-कटि जे रण में गिरे, करि कृपाण-ब्रत-त्राण ।
क्यों न हुलसिकैं बारिये तिन भुजानु पै प्राण ।। ३७ ।।

बड़े-बड़े बरबाहु के नहिं केते बरिबंड ।
दुवन-दर्प पै दलत जे, ते औरै भुज-दंड* ।। ३८ ।।

वीर-नेत्र

होति लाख में एक कहुँ अनल-बर्न वह आँख ।
देखतहीं दहि करति जो दुवन-दीह-दलु राख ।। ३९ ।।

नयन कंज, खंजन, मधुप, मद, मृग, मीन समान ।
लोहितु और अँगारु पै द्वै अनुपम उपमान ।। ४० ।।

सुभट-नयन अंगारु, पै अचरजु एकु लखातु ।
ज्यौं-ज्यौं परतु उमाह-जलु, त्यौं-त्यौं धँधकत जातु ।। ४१ ।।

---

* निम्नलिखित दोहे के साँचे में—

अनियारे, दीरघ दृगनु किती न तरुनि समान ।
वह चितवनि औरै कछू, जिहि बस होत सुजान ।।   —विहारी

जाव फूटि रति-रँग-रली, अलसौहीं वह आँख ।
सहज ओज-ज्वाला-ज्वलित चिरजीवौ जुगलाख ॥ ४२ ॥

सुरत-रंग कहँ दृगनि में, कहँ रण-ओज-उदोतु ।
यातें उज्ज्वल होतु मुखु, वातें कज्जल होतु ॥ ४३ ॥

युद्ध-रत्त-दृग-रक्त की कहा रक्त-सँग लाग ।
लागतु यातें दाग, वह मेटतु हियकौ दाग ॥ ४४ ॥

सहज सूर-नैननि लख्यौ सील-ओज-संचार ।
एकैरस निबसत तहाँ पानिप और अँगार ॥ ४५ ॥

जदपि रुद्धबल-तेज कौ कियौ न प्रगटि प्रकासु ।
दिपतु तऊ अँखियानि ह्वै अंतर-ओज-उजासु ॥ ४६ ॥

खड्ग

परयौ समुझि नहिँ आजु लौं या अचरज कौ हेतु ।
फरयौ असित असि-लता तें सुजस-चारु-फलु सेतु ॥ ४७ ॥

जदपि इतो पानिप चढयौ, अचरजु तदपि महान ।
नितप्रति प्यासीही रही, लही न तृप्ति कृपान ॥ ४८ ॥

बसति आपु लघु म्यान में वह कृपान लघुगात ।
त्रिभुवनमें न समातु पै सुजसु तासु अवदात ॥ ४९ ॥

प्रलय-कामिनी तुव, छता* ! लपलपाति तरवार ।
खात-खात खल-सीस जो लई न अजहुँ डकार ॥ ५० ॥

बसै जहाँ करबाल ! तूँ, रमै तहाँ किमि बाल ?
एकसंग निबसति कहूँ ज्वाल मालती-माल ॥ ५१ ॥

धारि सील, असि-बालिके ! अब तूँ भई सयानि !
अरी हठीली ! कित तजी वह इठलाहट-बानि ? ॥ ५२ ॥

तड़ित और तरवार में समता किमि ठहराय ।
ज्यौंहीं यह चमकति दमकि, त्यौंहीं वह दुरि जाय ॥ ५३ ॥

लहरति, चमकति चाव सों तुव तरवार अनूप ।
धाय डसति, चौंधति चखनु, नागिनि दामिनि रूप ॥ ५४ ॥

वह नाँगी तरवारहू बनी लजीली नारि ।
नहिँ खोल्यौ मुख म्यान तें, है मनु परदावारि ॥ ५५ ॥

करति मरम-तर वार जो, सोइ प्रखर तरवार ।
जानति कबहुँ कृपा न करि, कहिय कृपान करार ॥५६॥

सुभट लाल ! असि-दूतिका ठाढ़ी सहज-सयानि ।
मानिनि बसुधा-बाल कौ यही गहावति पानि ॥ ५७ ॥

रमति अंत नहिँ कंत तजि, कुल-कामिनि तरवारि ।
कहूँ दुहागिन होति है सती सुहागिन नारि ॥ ५८ ॥

---

* बुन्देलखंड-केसरी महाराज छत्रसाल ।

रण-नायक-भामिनि तुहीं, कुल-कामिनि करवाल !
अंतहुँ प्रीतम-कंठ तूँ भई लपटि रति-माल ॥ ५९ ॥

सोभित नील असीन पै रुधिर-बिन्दु-कृत जाल ।
लसै तमाल-लतान पै मनहुँ बधूटी-माल ॥ ६० ॥

धनुष-बाण

देखतहीं वह कुटिल धनु कुटिल सरल ह्वै जात ।
त्यौं अरि अथिर थिरात, ज्यौं बिषम बान लहरात ॥ ६१ ॥

बिसिख-भुजँग तुव फुङ्करत, उड़ि नभ-लगि मँड़रात।
अरि-अपजसु, तेरो सुजसु सँग लपेटि लै जात ॥ ६२ ॥

छूटतहीं परचंड सर, मारतंड-लौं धाय ।
भौननि प्रतिपच्छीनु के तिमिर देत चहुँ छाय ॥ ६३ ॥

इत सर सारँग पै चढ़तु, चढ़ि रागतु रण-रागु ।
उत अरि-अँगना-अङ्ग तें उतरतु सहज सुहागु ॥ ६४ ॥

खैंचतु धनु-गुण कर्ण लगि, कर्ण पार्थ-हिय-साल ।
स्वर्ण-ज्वाल चितवतु, किधौं गुहतु दामिनी-माल ॥ ६५ ॥

शिशु-वीरोक्तियाँ

वह शकुन्तला-लाड़िलो कबतें माँगतु रोय ।
"खड्ग-खिलौना खेलिबे अबहिं लाय दै मोय" ॥ ६६ ॥

गो-घातक वा बाघ की, जननि ! खैंचिहौं पूँछ ।
तीखन डाढ़ैं तोरिहौं, अरु उखारिहौं मूँछ ॥ ६७ ॥

दै तौ, मैया ! नैक तूँ मेलो[1] तील[2]-कमान ।
चंदै भूमि गिलाउँगो[3], मालि[4] अचूक निछान[5] ॥ ६८ ॥

ऊँ ऊँ, मैं तौ लैउँगो ओई तील-कमान ।
मालूँगो[6] म्लगलाज[7] मैं, घालि अचूक निछान ॥ ६९ ॥

मति दै चकली[8] तूँ हमैं, मति दै गैंद, अजान !
अम[9] तौ ओई लैयँगे लखन-लाम[10]-धनु-बान ॥ ७० ॥

गहि पटुका बलराम कौ रह्यौ मचलि नँदलाल ।
"दाऊ ! मोय मँगाय दै छोती-छी[11] तलबाल[12]" ॥ ७१ ॥

भावतु मैया ! मोय नहिँ फीको चंदन भाल ।
दै लगाय तूँ बस वही नीको टीको लाल ॥ ७२ ॥

सीय-हरनु लखि स्वप्न में उठ्यौ कान्ह अतुराय ।
धनु मेरो, दाऊ ! कितै, दै तौ नैक उठाय ॥ ७३ ॥

प्रेम और वीरत्व

प्रेम-मरमु जानै कहा बिषया कायर क्रूर ।
इक साँचो रणसूरही पहिँचानतु रसमूर ॥ ७४ ॥

---

१ मेरो । २ तीर । ३ गिराउँगो । ४ मारि । ५ निसान । ६ मारूँगो । ७ मृगराज । ८ चकरी । ९ हम । १० राम । ११ छोटी-सी । १२ तलवार ।

हित-जौहरु जानै कहा यह मनोज-मद-चूर ?
परखि पारखीही सकै प्रेम-रत्न रण-सूर ॥ ७५ ॥

और बनायें बनत, पै ह्वै न बनत केहुँ बार ।
मरजीवा मरमी रसिक, अरु सिर-सौंपनहार ॥ ७६ ॥

सब तौ साँचे में ढरे, ढरे न ए ह्वै ढार ।
प्रेम-मेंड़-रखवार, औ सीसु चढ़ावनहार ॥ ७७ ॥

रे बिषयी ! प्रेमी बनत, नैक न लागति लाज !
केते कठिन-कपोत-व्रत पालनहारे आज* ? ॥ ७८ ॥

निर्विकार, निर्लेप, नित, निखिल-ब्रह्म-सुख-सारु ।
सोइ प्रेमु बिषयीनु कौं भयौ आजु खेलवारु † ॥ ७९ ॥

जनि गनियौ खेलवारु यौं, कठिन प्रेम-असि-धार ।
चातक-मीन-कपोत-व्रत कहँ अब पालनहार ॥ ८० ॥

मथि-मथि अच्छर-निधि मरे, कढ्यो न कछुवै सार ।
इक प्रेमी, इक सूरमा भये उतरि भव-पार ॥ ८१ ॥

सेना-पति सत-सहसहूँ सकैं जाहि नहिं जीति ।
ताहि स्वबस करि लेति है सहज प्रीति की रीति ॥ ८२ ॥

*है इत लाल कपोत-व्रत, कठिन प्रेम की चाल ।
मुख तें आह न भाखही, निज सुख करहिं हलाल ॥
—हरिश्चन्द्र ।

†गिरि तें ऊँचे रसिक-मन बूड़े जहाँ हजारु ।
वहै सदा पसु नरनु कौं प्रेम-पयोधि पगारु ॥
—विहारी ।

और अस्त्र केहि काम के, प्रेम-अस्त्र जो साथ ।
प्रेम-रथी के हाथ हैं महारथिनु के माथ ॥ ८३ ॥
कृष्ण-प्रेम-रस-भरित, कै पूरित समर-उछाह ।
सुर-सरिताहूतेँ परम पावन अश्रु-प्रवाह ॥ ८४ ॥

मातृ-शिक्षा

क्यों न चढ़ावत सिर-चढ्यौ ललन! बान धनु तानि ।
किन खेलत खिन खड्ग सों, जासु खिलौंहीं बानि ॥ ८५ ॥
खंड-खंड ह्वै जाव, पै धर्म न तजियौ एक ।
सपथ, लाल! या खड्ग की, रहियौ गहि कुल-टेक ॥ ८६ ॥
कह्यौ माय, मुख चूमिकैँ, कर गहाय करबाल ।
"जनि लजाइयौ दूध मो पयोधरनु कौ लाल!" ॥ ८७ ॥
चूर-चूर ह्वै अंतलौं रखियौ कुल की लाज ।
जननि-दूध-पितु-खड्ग की अहै परिच्छा आज ॥ ८८ ॥
पाठु पढ़ावति मातु नित, लै उछंग निज लाल ।
"ललन! बीर-ब्रत धारियौ, धरि पछारियौ काल" ॥ ८९ ॥
लोटि-लोटि जापै भये धूरि-धूसरित, आज ।
वत्स! तुम्हारे हाथ है ता धरनी की लाज ॥ ९० ॥

लिखत मिटावत, लाल ! क्यों चक्रव्यूह को चित्र ?
कबहुँ अघातैही नहीं, सुनि अभिमन्यु-चरित्र ! ॥ ९१ ॥

शूर-साधन

होत सूर सरनाम करि चूर-चूर निज अङ्ग ।
पिसत-पिसत ज्यों सिला पै लावति मेंहदी रंग* ॥ ९२ ॥

रण-यात्रा और ज्योतिष

अब पत्रा देखत कहा, सोधत सुदिनु, गँवार !
परे कूदि रण-कुंड वै, रहे तोरि गढ़-द्वार ॥ ९३ ॥
मिलतु न पत्रा में सुदिनु, भिरत न कादर मंद ।
नहिँ सोधत रण-बाँकुरे नखत, बार, तिथि, चंद ॥ ९४ ॥
चलत कबहुँ दिन सोधि तुम, कबहूँ छींक बचाय ।
किन इन थोथे टोटकनु दई अनी बिचलाय ?॥ ९५ ॥
सुदिनु ज्योतिषी तें कहा सोधवावत रण-हेत ?
चढ़ि आये वै दुर्ग पै, तुम इत परे अचेत ॥ ९६ ॥

---

* ता हमचो हिना सूदह न गरदी तहे संग ।
हरगिज़ बक़फ़े पाये निगारे न रसी ॥
अर्थात्, जबतक मेंहदी की तरह पत्थर के नीचे पिस न जाओ, हरगिज यार के पाँव के तलुए तक नहीं पहुँच सकते ।

अप्रिय और प्रिय

गावत गायक बीन लै बिरही राग बिहाग ।
नाहिं अलापत, आजु क्यों मङ्गल मारू राग ॥ ९७ ॥

फूँकत पीँ-पीँ बाँसुरी, रह्यौ न यामें स्वाद ।
है त्रिलोक में भरि गयौ संगर-संख-सुनाद ॥ ९८ ॥

लावत रँगि रँगरेज ! क्यों पगियाँ रंग-बिरंग ?
अब तौ, बस, भावतु वहै सुंदर रंग सुरंग ॥ ९९ ॥

चित्राङ्कण

जियत बाघ की पीठि पै धनु-धारीनु चढ़ाय ।
क्यों न, चितेरे ! चित्र तूँ उमँगि उतारत आय ? ॥१००॥

तीसरा शतक

शक्ति-स्तुति

शक्ति-शक्ति! शिव-शक्ति जय, जगत-ज्योति, जगदम्ब!
आरत-भारत-आर्ति कों क्यों न हरति अबिलम्ब ? ।। १ ।।

त्रिभुवनेश्वरी ! त्रयनयनि ! जय, त्रिशूलिनी अम्ब !
जन-त्रिताप-उपशमन में क्यों अब करति बिलम्ब ? ।। २ ।।

कर्षतु रवि-रथ-चक्र जो, नित नभ ताण्डव माहँ ।
रहौ, अम्ब ! जन-सीस पै वही बाहँ की छाहँ ।। ३ ।।

महिष-शूलिनी ! शूलिनी ! मौलि-मालिनी ! त्राहि ।
जय जगदम्ब, कपालिनी ! प्रणत-पालिनी, पाहि ।। ४ ।।

प्रलय-हासु जब कालिका करति सुभाय स्वछन्द ।
प्रखर-दंत-दुति-दमक तें परतु सूर्यशत मन्द ।। ५ ।।

या भारत-आरति हरौ सोइ शक्ति द्रुत धाय ।
जासु प्रलय-पगु परतहीं शवहू शिव ह्वै जाय ।। ६ ।।

कब कौ ठाढ्यौ पौरि पै, सुनति नाहिँ कछु, अम्ब !
कहौ, कहाँ तुव अंक तजि सिसुहिँ आन अवलम्ब ? ।। ७ ।।

निबलनु कों साँसत सबल तुव देखत बसुयाम ।
कहा जानि, धारयौ जननि ! 'महिष-मर्दिनी' नाम ? ॥ ८ ॥
कलपि-कलपि भूखन मरति तुव संतति अभिराम ।
कहा जानि, धारयौ जननि ! 'अन्नपूरणा' नाम ? ॥ ९ ॥
अट्टहासु करि, धारि उर मौलि-माल अविलम्ब ।
आदिनटी शिव सँग नटी प्रलय-नाट्य जग-अम्ब ॥ १०॥

राघव-प्रतिज्ञा

जेहि सर मधु-कैटभ हने, किये त्रिसिर खर खीस ।
खल ! ताही तें काटिहौं भुजाबीस दससीस ॥ ११ ॥

सौमित्रि-प्रतिज्ञा

जौ न घालि घननाद-कों यमपुर आजु पठाउँ ।
हौं रामानुज मुख कबौं जियत न औध दिखाउँ* ॥ १२ ॥
कह्यौ कोपि सौमित्रि यौं ध्याय राम-युग-पाद ।
"कै अब मेरो बानहीं, कै तैंहीं, घननाद ! ॥ १३ ॥

---

*जौं तेहि आजु बधे बिनु आवउँ । तौ रघुपति-सेवक न कहावउँ ॥
जौं सत संकर करहिं सहाई । तदपि हतउँ रघुबीर दुहाई ॥
[राम-चरित-मानस]

मारुति-प्रतिज्ञा

उठि ठाढ़ो ह्वै है जबै सधनु सुमित्रा-नन्द ।
तबहिँ पसीना पोंछिहौं पथ-श्रम कौ, रघुचन्द ! ॥ १४ ॥

जौलगि मूरि न लाउँ मैं मारुति तौलगि, तात* ! ।
करि सुधि मो सिसु-केलि की मुख न खोलियौ प्रात ॥ १५ ॥

भीष्म-प्रतिज्ञा

रहिहौं अस्त्र गहाय हरि ! रखि निज प्रण की लाज ।
कै अब भीषमहीं यहाँ, कै तुमहीं, यदुराज ! ॥ १६ ॥

सरनि ढाँपि रवि-मंडलहिँ, शोणित-सरित अन्हाय ।
तेरीही सौं तोहि हरि ! रहिहौं अस्त्र गहाय ॥ १७ ॥

तेरीही सौं, युद्ध-मधि, तेरेहीं बल आज ।
हौं शान्तनु-सुत मेटिहौं प्रण तेरो, यदुराज† ॥ १८ ॥

इत पारथ-रथ-सारथी, उत भीषम रण-धीर ।
तिलहूँ नहिँ टारे टरैं, दुहूँ बज्र-प्रण-वीर ॥ १९ ॥

---

* सूर्य से तात्पर्य है ।

† आजु जौ हरिहिं न शस्त्र गहाऊँ ।
तौ लाजौं गंगा जननी कौं, सान्तनु-सुत न कहाऊँ ॥
स्यंदन खंडि महारथ खंडौं, कपिधुज सहित डुलाऊँ ।
इती न करौं सपथ मोहिँ हरि की, छत्रिय-गतिहिँ न पाऊँ ॥
पांडव-दल सनमुख ह्वै धाऊँ, शोणित-सरित बहाऊँ ।
'सूरदास' रणभूमि बिजय बिन जियत न पीठि-दिखाऊँ ॥

मुख श्रम-सीकर, अरुण दृग, रण-रज-रंजित केश ।
फहरतु पट्ठ, गहि चक्र हरि धाये सुभट-सुवेश ॥ २० ॥

रज-रंजित कच, रुधिर-मिलि झलकत श्रमकण अंग ।
फहरतु पट्ठ, गहि चक्र हरि धाये करि प्रण-भंग* ॥ २१ ॥

भक्त-बछल पारथ-सखा, धन्य धन्य, यदुराज !
राखी निज प्रण मेंटि जन शान्तनु-सुत की लाज ॥ २२ ॥

प्रण कीनों बहु बीर जग, टेकहुँ गही अनेक ।
पै भीषम-व्रत आजुलौं है भीषम-व्रत एक ॥ २३ ॥

समसरि कासों काजियै, मिल्यौ नाहिँ उपमान ।
भीषम-सो भीषम भयौ इक भीषम व्रतवान ॥ २४ ॥

अर्जुन-प्रतिज्ञा

भानु-अस्तलौं आजु जौ बच्यौ जयद्रथ-जीव ।
चिता लाय तनु जारिहौं, तोरि-तारि गांडीव ॥ २५ ॥

लै न सक्यौ, हरि ! आजु जौ अधम जयद्रथ-जीव ।
तौ पारथ हौं क्लीव अब नहिँ लैहौं गांडीव ॥ २६ ॥

---

* वा पटपीत की फहरान ।
कर धरि चक्र चरन की धावनि, नहिँ बिसरति वह बान ॥
रथ तें उतरि अवनि आतुर है, कचरज की लपटान ।
मानौं सिंह सैल तें निकस्यौ, महामत्त गज जान ॥
जिन गुपाल मेरो प्रन राख्यौ, मेटि वेद की कान ।
सोई सूर सहाय हमारे निकट भये हैं आन ॥

कन्ह-प्रतिज्ञा

'तो रक्खों ढिल्लिय तखत, भुजन ठिल्लि कनवज्ज ।'*
अज्ज-पैज असि कन्ह-लौं करनहार को अज्ज ? ॥ २७ ॥

बादल-प्रतिज्ञा

जौं न स्वामि निज उद्धरौं, बद्दल नाम लजाउँ ।
पिउँ न जल मेवाड़ कौ, जियत न मूँछ रखाउँ† ॥ २८ ॥
इन बाहुन तें बैरि-दल जौं न ठेलि लै जाउँ ।
जीवित मुख न दिखाउँ मैं, बद्दल नाम लजाउँ ॥ २९ ॥

---

* इन भुजन ठेलि जयचाँद-दल, तुव रक्खों ढिल्लिय तखत ॥
(पृथिवीराज-रासो)

† बादशाह अलाउद्दीन के कारागार से अपने पति महाराज भीमसी (भीमसिंह) को मुक्त कराने के लिये जब महारानी पद्मिनी अपने चचेरे भाई बादल की सहायता लेने को उसके पास गई, तब उसने जो वीर-प्रतिज्ञा की उसका वर्णन महाकवि मलिक मुहम्मद जायसी ने कैसा फड़कता हुआ किया है—

उए अगस्त हस्ति जब गाजा । नीर घटे घर आइहि राजा ॥
बरषा गये, अगस्त जौ दीठिहि । परिहि पलानि तुरंगम पीठिहि ॥
बेधौं राहु, छोड़ावहुँ सूरू । रहै न दुख कर मूल अँकूरू ॥

अपनी माता से, युद्ध-यात्रा करते समय, बादल कहता है—

मातु ! न जानसि बालक आदी । हौं बादला सिंघ रनबादी ॥
सुनि गज-जूह अधिक जिउ तपा । सिंघ क जाति रहै किमि छपा ॥
तौलगि गाज, न गाज सिंघेला । सौंह साह सौं जुरौं अकेला ॥
को मोहिं सौंह होइ मैमंता । फारौं सूँड़, उखारौं दंता ॥
जुरौं स्वामि सँकरे जस ढारा । पेलौं जस, दुरजोधन भारा ॥
अंगद कोपि पाँव जस राखा । टेकौं कटक छतीसौ लाखा ॥
हनुवँत सरिस जंघ बर जोरौं । दहौं समुद्र, स्वामि बँदि छोरौं ॥
[पदमावत]

प्रताप-प्रतिज्ञा

मूँछ न तौलौं एंठिहौं, हौं प्रताप भुज-हीन ।
करि पायौ जौलौं न मैं गढ़ चितौर स्वाधीन ॥ ३० ॥

महल नाहिं पगु धारिहौं, रहिहौं कुटी छवाय ।
हौं प्रताप जौलौं न ध्वज दई फेरि फहराय ॥ ३१ ॥

वीर-प्रतिज्ञा

हौंहूँ सिंह-कुमार, जो वह खलु गज मदमंत ।
कुंभहिं नखनु बिदारिहौं, अरु उखारिहौं दंत ॥ ३२ ॥

हौंहूँ आजु अगस्त्य, जो वह अभिमान-समुद्र ।
ताहि अँचैहौं अंजुरिनु, सहज सोखिहौं छुद्र ॥ ३३ ॥

हौंहूँ मघवा-बज्र, जो वह खलु भूधर-शृङ्ग ।
दैहौं खेह मिलाय मैं, चूर-चूर करि अंग ॥ ३४ ॥

वीर-विदा

मिलियौ तहँ परखति, प्रिये ! मिलिहौं सरबसु वारि ।
बिसिख-हारु हौं पैन्ह, तुम ज्वाल-माल उर धारि ॥ ३५ ॥

रहियौ यौंही भेंटिबे, प्रिये ! बढ़ाये बाहिं ।
भेदि भानु-मंडलहिं मैं मिलिहौं सुर-पुर माहिं ॥ ३६ ॥

हौं तौ, पिय ! प्रथमहिं चली, भली भाँति रति लालि ।
आय भेंटियौ मोहि उत, बेगि बीर-ब्रत पालि ॥ ३७ ॥

सजनी ! पिउकों भेंटिलै भरि भुज अंतिम बार ।
हित-बगिया तें पुहुप लै करि साजन-सिंगार ॥ ३८ ॥

युद्ध-दर्शन

सुन्यौ प्रलय-घन-घोर-लौं जब सैनिक रण-संख ।
किलकि-किलकि कूदे समर, भरि उड़ान बिनु पंख ॥ ३९ ॥
धौल धौरहर ढाय महि, करि शिव बिधि कौ ख्याल ।
धूम-धौरहर नील नभ सृजति तोप बिकराल ॥ ४० ॥
चली चमाचम चोप सों चकचौंधिनि तरवार ।
पटी लोथ पै लोथ, त्यौं बही रक्त-नद-धार ॥ ४१ ॥
नहिं यह झरना गेरु कौ, नाहिं शृङ्ग यह श्याम ।
असि-विदीर्ण-करि-कुंभ तें स्रवतु शोण अविराम ॥ ४२ ॥
कूदतु अरि-करि-कुंभलगि, छुवतु व्यूह कौ छोरु ।
बरजोरी बरजेहुँ पै करतु तुरँगु मुहँजोरु ॥ ४३ ॥
तुरँग, तोप, तरवार तहँ निज-निज पूरत काजु ।
धूरि-धूम-लोहित-मयी सृजत सृष्टि नव आजु ॥ ४४ ॥

भारत-पताका

जाहि देखि फहरत गगन गये काँपि जग-राज ।
सो भारत की जय-ध्वजा परी धरातल आज ॥ ४५ ॥

रवि-रथांग सों भगरि जो खेलति ही फहराय ।
वह भारत की जय-ध्वजा लुठित भूमितल हाय ॥ ४६ ॥

प्रकृत वीर

प्रकृतबीर कौ अंतहूँ परतु मंद नहिँ तेज ।
नहिँ चाहतु चंदन-चिता भीष्म छाँड़ि सर-सेज ॥ ४७ ॥
औसर आवत प्रान पै खेलि जाय गहि टेक ।
लाखनु बीच सराहियै प्रकृतबीर सो एक ॥ ४८ ॥
सुमृदु सिरीष-प्रसून तें, कठिन बज्र तें होय ।
प्रकृत-बीर-बर-हीय कौ चित्र न खींच्यौ कोय ॥ ४९ ॥

स्वदेश-परिचय

रमा, भारती, कालिका करति कलोल असेस ।
बिलसति, बोधति, संहरति जहँ, सोई मम देस ॥ ५० ॥

राजस्थान

मिली हमैं थर्मोपिली ठौर-ठौर चहुँपास ।
लेखिय राजस्थान मैं लाखनु ल्यूनीडास *॥ ५१ ॥

---

* "राजस्थान में कोई छोटा-सा भी राज्य ऐसा नहीं है, कि जिसमें थर्मोपिली-जैसी रण-भूमि न हो, और कदाचित् ही कोई ऐसा नगर मिले, जहाँ लियोनिडास-जैसा वीरपुरुष पैदा न हुआ हो।"

—जेम्स टॉड।

सन् ४८० ई० से पूर्व फ़ारस के बादशाह ज़र्कसीज़ ने बड़ी भारी सेना लेकर यूनान पर चढ़ाई

चित्तौर

मनु मेरो चित्तौर पै लखि तेरो जस-थंभ ।
भ्रमतु, हँसतु, रोवतु अहो ! सुभट-मौलि नृप कुंभ* ! ॥ ५२ ॥

तपत बात उर लाय, फिरि सेवहु धीर समीर ।
प्रथम जाहु चित्तौर-गढ़, पुनि बिरमहु कसमीर ॥ ५३ ॥

जनि सुपूत बापा† सुभट, साँगा‡, कुंभ§ प्रताप ।
बीर-जननि चित्तौर ! तूँ दल्यौ तुवन-दल-दाप ॥ ५४ ॥

की । उस समय उस देश में अनेक छोटे-छोटे राज्य थे, जिन्होंने मिल कर अपने में से स्पार्टा के वीर राजा लियोनिडास को थर्मोपिली की घाटी में ८००० सैनिकों के साथ ईरानियों का सामना करने को भेजा । ईरानियोंने कई बार उस घाटी को जीत लेने की चेष्टा की, पर हर बार उन्हें हार कर पीछे लौटना पड़ा । अंत में, एक विश्वासघाती की मदद से शत्रु पीछे से पहाड़ पर चढ़ आये । अपनी फौज़ में से बहुत से लोगों का ईरानियों की तरफ़ मिल जाने का शक होने से लियोनिडास ने सिर्फ़ १००० सैनिकों को पास रख सेना को निकाल बाहर कर दिया और आप अपूर्व वीरता से लड़ कर वहीं मारा गया । उसकी सेना में से, कहते हैं, सिर्फ़ एक ही मनुष्य जीवित बचा था ।

* महाराणा कुम्भाने वि० सं० १४९७ में मालवे के सुलतान महमूदशाह ख़िलजी को प्रथम वार परास्त कर उसकी यादगार में अपने इष्टदेव विष्णु के निमित्त यह कीर्ति-स्तंभ बनवाया था । इसकी प्रतिष्ठा वि० सं० १५०५ माघ बदि १० को हुई थी । × × × × × यह भारतवर्ष में अपने ढंग का एक ही स्तंभ है । वास्तव में, यह हिन्दुओं के पौराणिक देवताओं का एक अमूल्य कोश है । प्राचीन मूर्तियों का ज्ञान संपादन करनेवालों के लिये यह एक अपूर्व साधन है ।

[राजपूताने का इतिहास—पहला खंड, ३५५]

† चित्तौर का एक महाप्रतापी राजा, जिसका राज्याभिषेक, भाटों की ख्यातों के अनुसार, संवत् १९१ में हुआ था । श्रीयुक्त पंडित गौरीशंकर हीराचंदजी ओझा ने लिखा है कि बापा किसी राजा का नाम नहीं, किंतु उपनाम था, और पीछे से तो वे यह भी भूल गये कि किस का उपनाम बापा था ।

‡ महाराणा संग्रामसिंह ।

§ महाराणा कुम्भकर्ण, जिन्हें राणा कुम्भा भी कहते हैं ।

वह जौहर*, रण-रङ्ग वह, वह जूझन जुरि जङ्ग ।
अजहुँ चित्त चितवत वहै गिरिअरावली-शृङ्ग ॥ ५५ ॥
दहलति ही दिल्ली दलित, सुनि चितौर ! तुव धाक ।
क्यों न कहैं फिरि तोहि हम आजु हिन्द की नाक ॥ ५६ ॥
लोहागढ़ त्यौं सिंहगढ़, बांधव, रणथंभौर ।
औरहुँ गढ़, सिरमौरु पै सब में गढ़ चित्तौर ॥ ५७ ॥

मारवाड़

सौर्य्य-सरित-सिंचित जहाँ जूझन-खेत हमेस ।
मारवाड़-अस देस कों कहत मूढ़ मरुदेस ॥ ५८ ॥

हल्दीघाट

अहो सुभट-सोनित-सन्यौ, दृढ़व्रत हल्दीघाट† ।
अजहूँ हठी प्रताप की जोहत ठाढ़ो बाट ॥ ५९ ॥
साँचेहुँ, हल्दीघाट ! तुव छाती कुलिस-प्रचंड ।
बिछुरत बीरप्रताप के भई न जो सतखंड ॥ ६० ॥

---

* एक व्रत, जिसमें युद्ध के समय राजपूत-वीरांगनाएँ सतीत्व-रक्षा के निमित्त धधकती हुई अग्नि में अपने प्यारे बाल-बच्चों सहित प्रवेश करती थीं ।

† मेवाड़ की एक सुप्रसिद्ध घाटी और युद्ध-स्थली, जहाँ पर महाराणा प्रतापसिंह और बादशाह अकबर की सेना में घोर युद्ध हुआ था ।

बांधवगढ़

याही बांधव-दुर्ग* पै बिरुझे बाघ बघेल ।
यहीं गर्ज्जि रण-कालिका करी किलकि रण-केल ॥ ६१ ॥

भरतपुर-दुर्ग

एइ भरतपुर-दुर्ग है, दुजय दीह भयकारि ।
जहँ जट्टन के छोहरे दिये सुभट्ट पछारि† ॥ ६२ ॥
तुम ब्रज-जाटनु-दुर्ग कौ, कहु, को ढाहनहारु ?
जासु आपु रखवारु भो श्रीब्रजराज-कुमारु ॥ ६३ ॥

बुन्देलखंड

इतहूँ तौ रण-चंडिका वैसोइ खेली खेल ।
राजथान तें घटि कहा हमरो खंडबुँदेल ॥ ६४ ॥
यह सुभूमि सोनित-सनी, यह पहार, यह धार ।
हम बुँदेल-खंडीनु कों यहँई स्वरग-बिहार ॥ ६५ ॥
लोटि-लोटि बज्रांग में जहँ चँदेल बुन्देल ।
जन्म-जन्म वा भूमि पै, प्रभु ! खिलाइयौ खेल ॥ ६६ ॥

---

* रीवाँ राज्य का सुप्रख्यात 'बाँधवगढ़' नाम का प्राचीन किला । बघेलखंड में इसकी टक्कर का कोई भी किला नहीं है । इसी की बदौलत बघेलों ने अपने प्रबल शत्रुओं के कई बार दाँत खट्टे किये ।

† यह लोकोक्ति प्रसिद्ध है—

आठ फिरंगी, नौ गोरा । लड़े जाट के दो छोरा ॥

देखि ओरछा-भौन ए बिमल बेतवै-तीर ।
सुनि हरदौल-कथा* अजौं मनु ह्वै जातु अधीर ॥ ६७ ॥
भूपति मधुकरसाह-से†, बीरसिंह-से‡बीर ।
जहँ बिहरे बिचरे, यहै वही बेतवा-तीर ॥ ६८ ॥
ओही तुंगारण्य यह, वही बेतवागंग§ ।
वही ओरछा, पै कहाँ यहाँ आजु वह रंग ॥ ६९ ॥
झाँसी-दुर्गम-दुर्ग धनि, महिमा अमित अनूप ।
जहाँ चंचला‖ अवतरी प्रगट चंडिका-रूप ॥ ७० ॥

---

* देखिये टिप्पणी—पहला शतक; ३६ दोहा ।

† इनके शासन-काल में मुग़ल-सम्राट् अकबरने बुन्देलखंड-विजय करने का कई बार प्रयत्न किया, पर उसके सारे उद्योग असफल ही रहे । यह महाराज शूरवीर होने के अतिरिक्त सफल शासक एवं परम भागवत भी थे । महाकवि केशवदासने इनके विषय में लिखा है—

जिनके राज रसा बसे 'केशव' कुशल किसान ।
सिंधु-दिशा, नहिं बररही पार बजाय-निसान ॥
सबल शाह अकबर-अवनि जीति लई दिसि चारि ।
मधुकरसाह नरेश गढ़ तिनके लीने मारि ॥
खान गनै सुलतान कों राजा रावत बादि ।
हारे मधुकरसाह सों आपुन साह मुरादि ॥

‡ वीरसिंह देव महाराज मधुकरशाह के पुत्र थे । इन्होंने बादशाह अकबर के इतिहास-प्रसिद्ध मंत्री अबुल-फ़ज़ल को मारा था । इनकी युद्धप्रियता बुन्देलखंड में प्रसिद्ध है । 'वीरसिंह-देव-चरित्र' में कविवर केशवदासने इनकी वीर विरुदावली का अच्छा वर्णन किया है ।

§ महाकवि केशवदास लिखते हैं—

नदी बेतवै-तीर जहँ तीरथ तुङ्गारन्न ।
नगर ओरछो बहु बसै धरनीतल में धन्न ॥

‖ महारानी लक्ष्मीबाई ।

धनि, रण-मत्त गठेवरा* ! गौरव-गरब-निकेत ।
हमरे खंडबुंदेल कौ साँचेहुँ तूँ कुरुखेत ॥ ७१ ॥

है यह वही गठेवरा, जहाँ जूझि मजबूत ।
रहे खेत गृह-युद्ध में सवा लाख रजपूत ॥ ७२ ॥

है यह वही गठेवरा, जहँ अखंड बलचंड ।
खंड-खंड गृह-युद्ध तें भयौ बुंदेला-खंड ॥ ७३ ॥

यहिँ आल्हा-ऊदल† लरे, भिरे मरद मलखान‡ ।
यही महोबा-भूमि है, उन बीरनु की खान ॥ ७४ ॥

---

* बुन्देलखंडान्तर्गत छत्रपुर-राजधानी से ३ मील पूर्व एक सुप्रसिद्ध रणस्थल ।

नवाब शुजाउद्दौला ने अपने विश्वास-पात्र और वीर-वर गोसाईं अनूपगिरि, उपनाम हिम्मत बहादुर, को संवत् १८३५ के लगभग एक बड़ी सेना देकर बुन्देलखंड पर विजय प्राप्त करने को भेजा । हिम्मत बहादुर बुन्देलखंड-निवासी था, पर था पूरा देश-द्रोही । अस्तु; उस समय महाराज गुमानसिंह बाँदे में राज्य करते थे । नोने अर्जुनसिंह पँवार गुमानसिंहजी के सेनापति थे । इन्होंने हिम्मतबहादुर की फौज़ को ऐसा हराया कि उसके पैर उखड़ गये । नवाब के दूसरे सेनापति करामतखाँ को तो यमुना तैर कर किसी तरह अपने प्राण बचाने पड़े । नोने अर्जुनसिंह ने बुन्देलखंड की लाज रख ली । पर भारत की चिरसहेली फूट बुन्देलखंड की स्वाधीनता न देख सकी । महाराज छत्रसाल के वंशधरों ने आपस में लड़ना शुरू कर दिया । नोने अर्जुनसिंह पन्नावाले सरनेतसिंहजी का पक्ष ग्रहण कर पन्ना के मंत्री बेनीहुजूरी से, जिसके वंशधर अब मैहर में राज्य करते हैं, लड़ने को उद्यत हुए । इस युद्ध में समस्त बुन्देलखंड के बुन्देले एवं अन्य राजपूत किसी न किसी की तरफ़ से लड़ने को शामिल हुए । गठेवरा के मैदान में युद्ध हुआ । इस युद्ध को 'बुन्देलखंड का महाभारत' कहते हैं । बेनीहुजूरी इस लड़ाई में मारा गया और खेत अर्जुनसिंह के हाथ रहा । इस अभागे गृह-युद्ध में बुन्देलखंड-जैसा अखंड शक्तिशाली देश भी खंड-खंड हो गया ।

† महोबे के अधीश चंदेल परमाल के बनाफर सामन्त । इन दोनों वीर भ्राताओं की विरुदावली के ओजस्वी गीत आज भी गाँव-गाँव में 'आल्हा' के नाम से गाये जाते हैं । आल्हाकाव्य, वास्तव में, अपनी शैली का एकमात्र वीर काव्य है ।

‡ महोबे का एक महान् साहसी और वीर योद्धा । चँदेलों के इतिहास में यह भी अपना एक विशेष स्थान रखता है । महोबे की लड़ाई में वीरवर मलखान काका कन्ह के हाथ से मारा गया था ।

सह प्रताप आगवल्ली, सहित सिवा सह्याद्रि ।
चंद्र-चंद्रिका इव सदा, छत्रसाल बिंध्याद्रि ॥ ७५ ॥

पराधीनता

पराधीनता-दुख-भरी कटति न काटें रात ।
हा ! स्वतंत्रता कौ कबै ह्वैहै पुण्य प्रभात ॥ ७६ ॥

अथयौ बीर्य-प्रताप-रवि भावन भारत माँझ ।
अब तौ आई दुखमई अधिक अँधेरी साँझ ॥ ७७ ॥

निजता सों तौ बैरु अब, है परतासों प्रीति ।
निज तौ पर, पर निज भये, कहा दई ! यह रीति ॥ ७८ ॥

पर-भाषा, पर-भाव, पर-भूषन, पर-परिधान ।
पराधीन जन की अहै यह पूरी पहिँचान ॥ ७९ ॥

पतित वहै, नास्तिक वहै, रोगी वहै मलीन ।
हीन, दीन, दुर्बल वहै, जो जग अहै अधीन ॥ ८० ॥

दंभ दिखावत धर्म कौ यह अधीन मति-अंध ।
पराधीन अरु धर्म कौ, कहौ कहा संबंध ? ॥ ८१ ॥

जैहै डूबि घरीक में भारत-सुकृत-समाज ।
सुदृढ़ सौर्य-बल-बीर्य कौ रह्यौ न आज जहाज ॥ ८२ ॥

कत भूल्यौ निज देस, मति भई और तें और ।
सहज लेत पहिँचानि जब पसु-पंछिहुँ निज ठौर ॥ ८३ ॥

जरि अपमान-अँगार तें अजहुँ जियत ज्यौं छार ।
क्यों न गर्भ तें गरि गिरयौ, निलज नीच भू-भार ! ॥ ८४ ॥

लियौ धारि पर-भेष अरु पर-भाषा, पर-भाव ।
तुम्हैं परायो देखि यौं, क्यां न होय हिय घाव ? ॥ ८५ ॥

दई छाँड़ि निज सभ्यता, निज समाज, निज राज ।
निज भाषाहूँ त्यागि तुम भये पराये आज ॥ ८६ ॥

परता में तुम परि गये, नहिँ निजता कौ लेस ।
निज न पराये होयँ क्यों, बसौ जाय परदेस ॥ ८७ ॥

ह्वै पर अब अपनेनु तें करत कहा तुम आस !
रँगे सियारनु पै कहौ करतु कौन विश्वास ? ॥ ८८ ॥

मरनु भलो निज धर्म में, भय-दायक परधर्म* ।
पराधीन जानैं कहा, यह निज-पर कौ मर्म ॥ ८९ ॥

चाटत नित प्रभु-पद रहौ, दिन काटत बिन लाज ।
जूँठ टूकही अब तुम्हैं, है त्रिलोक कौ राज ॥ ९० ॥

मनु लागत न स्वदेस में, यातें रमत बिदेस ।
परपितु सों पितु कहत ए, तजि निज कुल निज देस ॥ ९१ ॥

आस देस-हित की हमैं नहिँ तुम तें अब लेस ।
जैसे कंता घर रहे, तैसे रहे बिदेस ॥ ९२ ॥

---

*स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः ।　　　　[भगवत्गीता]

हम अधीन हिन्दून कों, कहौ, कौन अब काज ?
पाप-पंक धोवैं न क्यों, मिलि रोवैं सब आज ॥ ९३ ॥

स्वाधीनता

निज भाषा, निज भाव, निज असन-बसन, निज चाल ।
तजि परता, निजता गहूँ, यह लिखियौ, बिधि ! भाल ॥ ९४ ॥
तुच्छ स्वर्गहूँ गिनतु जो इक स्वतंत्रता-काज ।
बस, वाही के हाथ है आज हिन्द की लाज ॥ ९५ ॥
भीख-सरिस स्वाधीनता कन-कन जाचत सोधि ।
अरे, मसक की पाँसुरिनु पाट्यौ कौन पयोधि ? ॥ ९६ ॥
वही धर्म, वहि कर्म, बल, वहि विद्या, वहि मन्त्र ।
जासों निज गौरव-सहित होय स्वदेस स्वतंत्र ॥ ९७ ॥

पराधीन और स्वाधीन

पराधीनु केहि कामकौ, जो सुर-पति-सम होय !
सतत सुखी स्वाधीनजनु, धनि, जगतीतल कोय ॥ ९८ ॥
जौ अधीन, तौ छाँड़ियै स्वर्गहुँ बिभव-बिलास ।
जौपै हम स्वाधीन, तौ भलो नरक कौ बास* ॥ ९९ ॥
पराधीन जौ जनु, नहीं स्वर्ग नरक ता हेतु ।
पराधीन जौ जनु नहीं, स्वर्ग नरक ता हेतु ॥ १०० ॥

---

* जौ न जुगुति पिय-मिलन की, धूरि मुकुति-मुहँ दीन ।
जौ लहियै सँग सजन, तौ धरक नरकहूँ कीन ॥
—विहारी

चौथा शतक

मारुति-वन्दना

कनक-कोट-कंगूर जो किये धौरहर धूम ।
सो भारत-आरति हरौ मारुति-लामी-लूम ॥ १ ॥

लामी लूम घुमायकैं कनक-कोट-चहुँओर ।
करतु केलि किलकारि दै कपि केसरी-किसोर ॥ २ ॥

लंका-युद्ध

भिरे अनल-मुख कपिनु सों तम-मुख राकस-पुञ्ज ।
भयौ युद्ध-थलु लंक कौ बिनुऋतु किंसुक-कुञ्ज ॥ ३ ॥

आवतु कज्जल-कूट-लौं प्रलय-रूप, सतसंध !
कुम्भकर्ण दसकंध कौ बिकट बंध रण-अंध ॥ ४ ॥

भूलेहुँ याहि न जानियौ वृत्र-सत्रु-पवि-पात ।
इन्द्रजीत ! है यह वही मारुति-मुष्टि-अघात ॥ ५ ॥

मेघनाद महितल गिर्यौ सुनि मारुति-हुंकार ।
कहूँ तून, कहुँ धनु पर्यौ, कहुँ कृपान, कहुँ ढार* ॥ ६ ॥

रुक्मिणि-हरण

सर बरसावतु रिपुन पै रथतें रुकमिनि-रौन ।
मुख-प्रसेदु पोंछति प्रिया, करि अँचरा सों पौन ॥ ७ ॥
गहि मेरो कर रुकमिनी ! मति काँपै घबराय ।
दूँगो प्रतिपच्छीनु के पच्छनु काटि गिराय ॥ ८ ॥

अभिमन्यु

जइयौ चितवत चाव सों प्रिया उत्तरा-ओर ।
ना जानैं, कब लौटिहौ, प्यारे पार्थ-किसोर ! ॥ ९ ॥
धन्य, उत्तरा-उर-धनी ! धन्य, सुभद्रा-नंद !
धनि भारत-भट-अग्रनीं ! पार्थ-पयोनिधि-चंद ! ॥ १० ॥
धन्य, पार्थ-चख-चंद ! तूँ, धन्य, सुभद्रा-लाल !
सातहुँ महारथीनु सों कियौ युद्ध बिकराल ॥ ११ ॥
सातहुँ महारथीनु सँग संगर जूझनहारु ।
ब्यूह-बिदारनु धनुधरु, बलि-बलि, पार्थ-कुमारु ॥ १२ ॥

---

* कहा लड़ैते दृग करे, परे लाल बेहाल ।
कहुँ मुरली, कहुँ पीतपट्ट, कहूँ मुकुट, बनमाल ॥
—बिहारी

भीम-भीमता

रह्यौ न केते पांडु-सुत बुद्धि-बल-बिक्रम-सीम ।
द्रौपदि-बेनी-बाँधिबो जानतु पै इक भीम ॥ १३ ॥

धर्मबीर अगनित रह्यौ, युद्धबीर बल-सीम ।
पै द्रौपदि-अपमान-हरु, भीमकर्म इक भीम ॥ १४ ॥

द्रौपदी-केश-कर्षण

कृष्णा-कच-कर्षण लखत, धिक, पारथ नतग्रीव !
धिक पौरुष, धिक बाहु-बल, धिक-धिक यह गांडीव ॥ १५ ॥

खैंचतु खल तिय-पट, तऊ खैंचत नाहिँ कृपान ।
धर्मराज ! धिक धर्म अस, धिक धीरज, धिक ज्ञान ॥ १६ ॥

छाँड़ि, कहा कृष्णा-कचनु करषत माँड़ि उमाहु ।
करिहै केस-कृसानु यह कौरव-कानन-दाहु ॥ १७ ॥

धिक, दिल्ली दुरभागिनी ! अजहुँ खरी बिनुलाज ।
कृष्णा-कच-कर्षण लखति, परी न तो सिर गाज ॥ १८ ॥

गई न धँसि पाताल तूँ, लखि द्रौपदि-पट-हीन ।
धिक, दिल्ली दुरभागिनी ! दिन-दिन दीन अधीन ॥ १९ ॥

चाणक्य

दियौ उलटि साम्राज्य तैं करि अशक्यहू शक्य ।
नीति-वीरता* में तुहीं कुशल एक चाणक्य ॥ २० ॥
राज-मुकुट नवनंद† के, चन्द्रगुप्त सुख-दैन !
लखि लुंठित तुव पगनु पै कबै सिरैहौं नैन ॥ २१ ॥

चंद्रगुप्त

जासु समर-हुंकार तें काँपतु विश्व विराट ।
सेल्यूकस‡- गज-सिंह सो जयतु गुप्त सम्राट ॥ २२ ॥

काका कन्ह

अरि-आँतन की बाँधिकैं सुभग सीस पै पाग ।
चढ़ो अलापतु अश्व पै कन्ह मत्त रण-राग ॥ २३ ॥

* नव नन्दन कों मूलसहित खोद्यौ छन भर में ।
चन्द्रगुप्त में श्री राखी, नलिनी जिमि सर में ॥
क्रोध प्रीति सों एक नासिकैं एक बसायौ ।
शत्रु मित्र कौ प्रगटि सबनु फलु लै दिखरायौ ॥
[मुद्राराक्षस]

† महाराज महानन्द और उनके आठ पुत्र।

‡ सिकंदर महान् का यह एक सेनापति था। इसने भारत के पूर्वीय प्रदेशों पर अधिकार कर लिया। और ३०५ ई० पूर्व में सिन्धु नदी को पार किया। परन्तु चंद्रगुप्तने उसे खदेड़ दिया। दोनों में संधि हो गई। सेल्यूकस ५०० हाथी लेकर संतुष्ट हो गया और उसने अपनी कन्या चंद्रगुप्त को ब्याह दी और अपना दूत मेगास्थनीज़ भी चंद्रगुप्त के दरबार में भेजा, जिसने तत्कालीन भारत का अपनी आँखों देखा एक सुन्दर वृत्तान्त लिखा।

अंतकहू के अंत-कर खड्ग-कामिनी-कंत ।
हैं कहँ काका कन्ह-से आजु सूर-सामन्त ॥ २४ ॥

कैमास

किते न उद्धत भूप किय, पृथीराज ! तुव दास ।
हनि ऐसो कैमास* अब तुव जीवनु कै मास ? ॥ २५ ॥

चामुंडराय

लियौ बाँधि चामुंडरै, हन्यौ सुमति कैमास ।
संभरीस ! साम्राज्य की करत तऊ तैं आस ॥ २६ ॥

---

* यह पृथ्वीराज का एक विश्वासपात्र मंत्री था। दैववशात् महाराज की एक कर्नाटकी नाम की वेश्या से इसका प्रेम हो गया। रानी इच्छनकुमारीने महाराज को इस अनुचित संबंध का पता दे दिया। महाराजने स्वयं भी एक दिन मंत्री को कर्नाटकी के साथ देख लिया और उसे अपने बाण का लक्ष्य कर मार डाला। कैमास की इस हत्या से सारे राज्य में असंतोष फैल गया। महाराज पृथ्वीराज ख़ुद अपने कार्य पर बहुत पछताये। कैमास की मृत्यु से उनका मानो एक हाथ ही कट गया। मंत्रि-वियोग के दुःख को पृथ्वीराज आमरण नहीं भूले।

† पृथ्वीराज के पुत्र रेणुसिंह और चामुण्डराय में बड़ी मित्रता थी। चंद्रपुण्डीर इत्यादि सामंत मामा-भांजे की इस मैत्री पर जलते थे। वे चाहते थे कि किसी तरह चामुण्डराय को नीचा दिखाना चाहिये। संयोगवश एक दिन महाराज पृथ्वीराज का हाथी छूट गया। एक गली में चामुण्डराय और उसका सामना हो गया। हाथी चामुण्डराय पर झपटा। हटने को कहीं स्थान न था। इसलिये वीर सामंतने तलवार का उस पर ऐसा वार किया कि उसकी सूँड़ कट गई और वह वहीं गिर कर मर गया। पृथ्वीराज को वह हाथी प्राणप्रिय था। उधर चामुण्डराय के विरुद्ध शिकायतें भी पहुँच चुकी थीं। महाराज यह सुन कर आग-बबूला हो गये, और चामुण्डराय को गिरफ़तार करने के लिये गुरुराम और आजानुबाहु को भेजा। परन्तु स्वामिभक्त चामुण्डरायने स्वयं ही अपने हाथों अपने पैरों में बेड़ी डाल लीं। चामुण्डराय की गिरफ़तारी से ही पृथ्वीराज के अधःपतन का श्रीगणेश हुआ। शहाबुद्दीन गोरी के कराल आक्रमण से साम्राज्य की रक्षा कराने के लिये पृथ्वीराज के बहनोई महाराणा

उद्धत भट-आहुतिन सों पूरि युद्ध-मख-कुण्ड ।
चल्यौ समर तें स्वर्ग कों अमर राय चामुण्ड ॥ २७ ॥

लंगरि राय

है तेरी ही मूँछ, औ तेरी ही तरवार ।
तुहीं पैज-रखवार है, संयमराय* - कुमार ! ॥ २८ ॥
किन तुव मरन सराहियै, संयमराय-कुमार !
जाहि सत्रु जयचंदहू दियौ अश्रु - उपहार ॥ २९ ॥
अहैं सूर-सामन्त तुव औरहु, संभरिराय !
पै दूजो नहिँ कन्ह, नहिँ दूजो लंगरिराय ॥ ३० ॥

कहरकंठीर और चंद्रपुंडीर

दुहूँ मत्त, जयचंद ! वै, दुहूँ बीर रण-धीर ।
यहाँ कहरकंठीर†, तौ वहाँ चंद्रपुंडीर‡ ॥ ३१ ॥

समरसिंहने विलासमग्न चौहान-राज को जब बहुत-कुछ फटकारा और लज्जित किया, तब कहीं उनके कहने पर वीर-शिरोमणि चामुण्डराय की बेड़ियाँ काटी गयीं । एकमात्र वीर सामंत चामुण्डराय जिस वीरता और साहस से मुहम्मद ग़ोरी से लड़ा, वह वर्णनातीत है ।

* देखो टिप्पणी—पहला शतक; २५ दोहा ।

† कन्नौज के महाराज जयचंदने इसी वीर योद्धा को अपनी कन्या संयोगिता का वाग्-दान दिया था ।

‡ महाराज पृथिवीराज चौहान का एक मुख्य सामंत ।

संयोगिता

पितु-पति-कुल-कूलनु अरे ! दैहै बादि ढहाय ।
कलह-धार संयोगिता-सरिता, संभरिराय ! ॥ ३२ ॥

पृथीराज ! करिहै कहा उर सँयोगितै धारि ।
अधरामिय-प्यासी न, वह सोनित-प्यासी नारि ॥ ३३ ॥

इत *गोरी गर लाय तूँ सोवत, संभरिराय !
भोगतु राज-सिरीहिँ तुव उत गोरी† गर लाय ॥ ३४ ॥

जयचंद

खोलि बिदेसिनु कों दियौ देस-द्वार, मतिमन्द‡ !
स्वारथ-लगि कीनों कहा, अरे अधम जयचंद ! ॥ ३५ ॥

स्वर्ग-देस लुटवाय, सठ ! कियौ कनक तें छार ।
फूटबीज इत ब्वै गयौ, ज़यचँद जाति-कुठार ! ॥ ३६ ॥

दियौ बिदेसिनु अरपि धन-धरती, धरमु स्वछंद ।
हमैं फूट अब देत तूँ, धिक, दानी जयचंद ! ॥ ३७ ॥

---

* महारानी संयोगिता ।

† शहाबुद्दीन मुहम्मद ग़ोरी ।

‡ काहे तूँ चौका लगाये, जयचँदवा ।
अपने स्वारथ भूलि लुभाये काहे चोटीकटवा बुलाये, जयचँदवा ॥
अपने हाथ से अपने कुल कै काहे तैं जड़वा कटाये, जयचँदवा ।
फूट के फल सब भारत बोये, बैरी कै राह खुलाये, जयचँदवा ॥
औरो नासि तैं आपौ बिलाने निज मुँह कजरी पुताये, जयचँदवा ॥

—भारतेन्दु हरिश्चन्द्र

आल्हा और ऊदल

आल्हा-ऊदल* सत्यही, गही साँग तरवार ।
ज्यौं साँचे हथयार, त्यौं साँचे घालनहार ॥ ३८ ॥

कियौ समर-साकौ सही जूझि महोबावाल ।
उमँगि ओजु आवतु अजौं सुनि-सुनि अल्ह-हवाल ॥ ३९ ॥

नहिँ आल्हा-ऊदल रहे, नाहिँ मरद मलखान† ।
सुजस-जुन्हाई पै अजौं करति जान्हवी-न्हान ॥ ४० ॥

गोरा और बादल

धनि, गोरा रण-साहसी ! धँसी साँग हिय-पार ।
बाँधि आँत, पुनि तेग लै, भयौ तुरँग-असवार ॥ ४१ ॥

बस, गोरा-रण-बीरता‡ लखियौ, पदुमिनि ! आज ।
रखिहै सीसु चढ़ाय वह तुव सुहाग की लाज ॥ ४२ ॥

---

* देखो टिप्पणी—तीसरा शतक; ७४ दोहा । आल्हा साँग और उसका भाई ऊदल तलवार बाँधा करता था । साँग बाँधनेवाला तो आल्हा के बाद कोई हुआ ही नहीं । इन दोनों वीर भ्राताओंने बावन लड़ाइयों में भाग लिया और शत्रुओं को परास्त किया था ।

† देखो टिप्पणी—तीसरा शतक; ७४ दोहा ।

‡ फिरि आगे गोरा तब हाँका । खेलौं, करौं आजु रन-साका ॥
हौं कहिए धौलागिरि गोरा । टरौं न टारे, अंग न मोरा ॥
सोहिल जैस गगन उपराहीं । मेघ घटा मोहि देखि बिलाहीं ॥
× × ×
गोरै साथ लीन्ह सब साथी । जस मैमंत सूँड़ बिनु हाथी ॥
सब मिलि पहिलि उठौनी कीन्ही । आवत आइ हाँक रन दीन्हीं ॥
× × ×

गोरा, तुव बद्दल बड़ो नीरसु, निपट कठोर ।
बिदा होत हेर्‌यौ न जो प्रिया-लोयननु ओर ॥ ४३ ॥

कहतु कौन 'बद्दल' तुम्हैं, हौ तुम समर-समीर ।
घेरत निजदल-बद्दलै, रिपु-दल-बद्दल चीर ॥ ४४ ॥

अलादीन-दल दारिबे, बद्दल बीर बलन्द ।
मेरे मत, मेवाड़ में प्रगट्यौ पारथ-नन्द ॥ ४५ ॥

भई बगमेल, सेल घन घोरा । औ गज-पेल; अकेल सो गोरा ॥
सहज कुँवर सहसौ सत बाँधा । भार पहार जूझ कर काँधा ॥
लगे मरै गोरा के आगे । बाग न मोर घाव मुख लागे ॥
जैस पतङ्ग आगि धँसि लेई । एक मुवै, दूसर जिउ देई ॥
टूटहिं सीस, अधर धर मारै । लोटहिं कंधहिं कंध निरारै ॥

घरी एक भारत भा, भा असवारन्ह मेल ।
जूझि कुँवर सब निबरे, गोरा रहा अकेल ॥

कोपि सिंघ सामुहँ रन मेला । लाखन्ह सों नहिं मरै अकेला ॥
लेइ हाँकि हस्तिन्ह कै ठटा । जैसे पवन बिदारै घटा ॥
जेहि सिर देइ कोपि करवारू । स्यों घोड़े टूटै असवारू ॥
लोटहिं सीस कबंध निनारे । माठ मजीठ जनहुँ रन ढारे ॥

× × ×

सबै कटक मिलि गोरहि छेका । गूँजत सिंघ जाइ नहिं टेका ॥
जिनि जानहु गोरा सो अकेला । सिंघ के मोछ हाथ को मेला ?॥
सिंघ जियत नहिं आपु धरावा । मुए पाछ कोई घिसियावा ॥
करै सिंघ मुख सौहहिं दीठी । जौ लगि जियै देइ नहिं पीठी ॥
रतनसेन जो बाँधा, मसि गोरा के गात ।
जौलगि रुहिर न धौवों तौलगि होइ न रात ॥

[पदमावत]

पद्मिनी-जौहर

वह चितौर की पद्मिनी, किमि पैहौ, सुलतान* !
कब सिंहिनि-अधरान कौ कियौ स्वान मधु-पान ? ॥ ४६ ॥

चंचरीक ! चित्तौर में नहिँ पैहै रस-जाल ।
ह्वै है चंपक-माल-लौं तोहि पद्मिनी बाल ॥ ४७ ॥

भई भस्म जहँ पद्मिनी आरज-धर्म समोय ।
यज्ञ-अग्निहू तें अधिक पावन पावकु सोय ॥ ४८ ॥

जा दिन जौहर तें जगी ज्वाल-माल अति चंड ।
जन-हीतल-सीतलकरन प्रगट्यौ जग श्रीखंड ॥ ४९ ॥

केहि कारन सेवतु सुरुचि नित नवीन समसानु ?
जहँ-तहँ जौहर की भसमु ढूँढ़तु संभु सुजानु ॥ ५० ॥

क्यों न धारियै सीस पै वह जौहर-व्रत-राख ।
भव-तनु-भूषन भसम तें जो पुनीत गुन लाख ॥ ५१ ॥

लिखे न केते सुमृति में व्रत-बिधान सबिबेक ।
पै जग-जाहिर जंग कौ व्रत जौहर बस एक ॥ ५२ ॥

महाराणा साँगा

लसति जासु पबि-देह पै असी घाव की छाप ।
सो साँगा† निज साँग तें दलै न काकौ दाप ॥ ५३ ॥

---

* अलाउद्दीन ख़िलजी से तात्पर्य है ।

† महाराणा संग्रामसिंह ।

है राणा साँगा ! तुहीं रण में मरद मलाह ।
किते न खाँड़े-घाट तैं दिय उतारि गुमराह ॥ ५४ ॥

जयमल और पत्ता

हे जयमल* राठौरही तुव सुपूत, चित्तौर !
भरत-भरत तुव घाव जो दिये प्रान तिहिं ठौर ॥ ५५ ॥

पत्ता-लौं अकबर-अनी पत्ता† दई उड़ाय ।
दिये फेरि चित्तौर पै प्रान-प्रसून चढ़ाय ॥ ५६ ॥

लाज आज मेवाड़ की, बस, तुम्हरेहीं हाथ ।
जयमल ! पत्ता ! फूल-लौं हँसि चढ़ाइयौ माथ ॥ ५७ ॥

जहँ जयमल, पत्ता तहीं, एक प्रान द्वै देह ।
भयौ अमरु मेवाड़ में, इन दोउनु कौ नेह ॥ ५८ ॥

महाराणा प्रताप

अणु-अणु पै मेवाड़ के छपी तिहारी छाप ।
तेरे प्रखर प्रताप तें, राणा प्रबल प्रताप ! ॥ ५९ ॥

जगत जाहि खोजत फिरै, सो स्वतंत्रता आप ।
बिकल तोहि हेरति अजौं, राणा निठुर प्रताप ! ॥ ६० ॥

---

* वेदनौर-नरेश जयमल राठौर ।

† चन्दावत कुल की जगवत शाखा में उत्पन्न हुआ प्रतापसिंह, जिसे लोग 'पत्ता' या 'पत्ते' कहा करते थे । यह कैलवाड़े का राजा था ।

है, प्रताप ! मेवाड़ में तुहीँ समर्थ सनाथ ।
धनि-धनि, तेरे हाथ ए, धनि-धनि, तेरो माथ ॥ ६१ ॥

रजपूतनु की नाक तूँ, राणा प्रबल प्रताप !
है तेरी ही मूँछ की, रायथान में छाप* ॥ ६२ ॥

काँटे-लौं कसक्यौ सदा को अकबर-उर माहिँ ?
छाँड़ि प्रताप-प्रताप जग दूजो लखियतु नाहिँ ॥ ६३ ॥

ओ, प्रताप मेवाड़-पति ! यह कैसो तुव काम ?
खात खलनु तुव खड्ग, पै होत काल कौ नाम ॥ ६४ ॥

उमँड़ि समुद्र-समुद्र-लौं ठिले आपु तें आपु ।
करुण-बीररस-लौं मिले सक्ता† और प्रतापु ॥ ६५ ॥

---

*बूड्यौ राज-समाज, दिल्ली-यवन-समुद्र में ।
आरज-गौरव-लाज, इक राखी परताप तुम ॥
अकबर परमप्रवीन, रजपूत दागिल किये ।
इक मिवार दागी न, तुव प्रताप-बल कारनै ॥
क्षल-क्षेल निःक्षल, भयौ होत निहचय कबै ।
जौ न धरत सिर छल, परम हठी परताप तूँ ॥
लै परताप उछंग, जननी जन्म सुफल भयौ ।
अकबर-काल-भुवंग, कुचले फन जिन पग तरैं ॥

—राधाकृष्णदास

† महाराणा प्रतापसिंह के भ्राता शक्तिसिंहजी, जो घर की किसी अनबन के कारण दिल्ली में अकबर के अधीन होकर रहने लगे थे ।

महाराणा राजसिंह

या औरँग-सिसुपाल तें रूपनगर की बाल[‡] ।
हरि-ज्यौं धाय उधारियौ, राजसिंह नरपाल ! ॥ ६६ ॥

चूड़ावत का प्रेमोपहार

प्रान-प्रिया कौ सीसु लै, परम प्रेम-उपहारु ।
चल्यौ हुलसि रण-मत्त ह्वै चूड़ावत सरदारु ॥ ६७ ॥
पायौ प्रनय-प्रमान में निज प्यारी-सुठिसीस ।
चूड़ावत ! उर धारि सो ह्वैहौ समर-गिरीस ॥ ६८ ॥

छत्रपति शिवाजी

किधौं रौद्ररस, रुद्र कै, किधौं ओज-अवतार ।
साह-सुवन सिवराज ! तैं किधौं प्रलय साकार ॥ ६९ ॥
रखी तुहीं सरजा सिवा ! दलित हिन्द की लाज ।
निरवलंब हिन्दून कों तूँहीं भयौ जहाज ॥ ७० ॥
यही रुद्र-अवतार है, यही सुभैरव-रूप ।
एही भीषण भीम है सिवा भौंसिला भूप ॥ ७१ ॥
औरँगहू तुव धाक तें ताकतु भामिनि-भौन ।
है लोहा तुव सँग, सिवा ! लेनहार फिरि कौन ? ॥ ७२ ॥

‡ प्रभावती ।

नित प्रति सेवा* खलनु कौ तोहि कलेवा देत ।
पेटु खलावत, काल ! तैं तऊ आय रण-खेत ॥ ७३ ॥

गरब करत कत बावरे, उमंगि उच्च गिरि-शृङ्ग !
जस-गौरव सिवराज कौ इत नभतें हुँ उतङ्ग ॥ ७४ ॥

'करकीं क्यों आपहिँ चुरीं ?' कहति हरम अकुलाय ।
'सुन्यौ नाहिँ, आवतु सिवा समर-निसान बजाय ?' ॥ ७५ ॥

ह्वैहौ विजयी विश्व में, अजित रायगढ़-राज !
गहि कृपान अरि काटिहौ, राखि हिन्द की लाज ॥ ७६ ॥

किते न तोपन तें सिवा दृढ़ गढ़ दिये ढहाय ।
केते सुरँग लगायकैं दिये न दुर्ग उड़ाय ॥ ७७ ॥

महाराजा छत्रसाल

छत्रसाल नृप ! नामु तुव मङ्गल-मोद-निधान ।
सुमिरि जाहि अजहूँ बनिक खोलत प्रात दुकान† ॥ ७८ ॥

चंपत कौ बच्चा तुहीं, है इक सच्चा शेर ।
जब्बर बब्बर-बंस के किये न केते जेर ॥ ७९ ॥

रैयत-हित हिय-दानु दिय, हथयारनु-हित हाथ ।
छत्रसाल, धनि ! कृष्ण-हित नैन, धर्म-हित माथ ॥ ८० ॥

---

*शिवाजी ।

† "छत्रसाल महाबली, करिहैं सब भली-भली ।"—ऐसा कह कर आज भी बुन्देल-खंड में नित्य प्रातःकाल दूकानदार दूकान खोलते हैं ।

गहि कृपान-कुस नृप छता* दियौ तोहि नित दानु ।
तऊ कृतघ्नी काल ! तैं नहिँ मानत एहसानु ॥ ८१ ॥

ग्रसित ग्राह-अवरङ्ग-मुख खंडबु देल-गयन्द ।
उमँगि उधार्‌यौ धाय, धनि, हरि इव चंपत-नन्द ॥ ८२ ॥

धनि, छत्ता ! तुव खग्ग, धनि, रण-अडग्ग पबि-देह ।
बहु मूँछनवारेनु कें मरदि मिलायौ खेह ॥ ८३ ॥

नहिँ छत्ता ! परवाह कछु तोहि शाह के द्वार ।
है तूँ ब्रज-दरबार कौ ऐँड़दार सरदार† ॥ ८४ ॥

---

*'छत्रसाल' का अपभ्रंश, जिसे तत्कालीन कवियोंने ही नहीं, महाराजने स्वयं भी अपनी कविता में प्रयुक्त किया है ।

† संवत् १७६५ में बादशाह बहादुरशाहने महाराज छत्रसाल को अपना 'मंसबदार' बनाना चाहा, पर उन्होंने यह पद स्वीकार नहीं किया । बोले—कौन किसका मंसबदार होता है ? जिसका नाम विश्वंभर है, जिसका बाँका विरद है, उसी प्रभु के हम मंसबदार हैं—

मनसबदार होइ को काकौ । नाम विसुम्भर सुनि जग बाँकौ ॥

(छत्रप्रकाश)

महाराजने इस प्रसंग पर स्वयं यह कवित्त रचा है—

जाकौ मानि हुकुम सुभानु तम-नासु करै,
चंद्रमा प्रकासु करै नखत दराज कौ ।
कहै छत्रसाल, राज-राज है भँडारी जासु,
जाकी कृपा-कोर राज राजै सुर-राज कौ ॥
जुग्म कर जोरि-जोरि हाजिर त्रिदेव रहैं,
देव परिचार गहैं जाके गृह-काज कौ ।
नरकी उदारता में कौन है सुधार, मैं तौ
मनसबदार सरदार ब्रज-राज कौ ॥

(छत्रसाल-ग्रन्थावली)

छत्रसाल-नृप-धाक तें बड़े-बड़े थहरायँ।
कहुँ 'छकार' के सुनतहीं छूटि न छक्के जायँ ॥ ८५ ॥

असि-भुवंगिनी-अंगना-संग, समर-संयोग।
भोगौ भुज-भुजगेन्द्र तो, छता ! छत्रपति-भोग ॥ ८६ ॥

कहूँ बिपत, कहुँ भयौ तूँ संपत, चंपत-लाल !
दुष्टनु-हित करबाल भो, अरु इष्टनु-हित ढाल ॥ ८७ ॥

चंपत* ! खंडबुँदेल की तैं पत राखनहारु।
डूबत हम हिन्दून कों तुव कुमारु कनधारु ॥ ८८ ॥

गुरु तेग़बहादुर

तेगबहादुर जो किया, किया कौन मुरशीद ?
सर दीना, सार न दिया†, साँचा अमर शहीद ॥ ८९ ॥

गुरु गोविन्दसिंह

जय अकाल-आनन्द-भव नव मकरन्द-मलिन्द।
शक्ति-साधना-सिद्धवर, असि-धर गुरुगोविन्द ॥ ९० ॥

---

* प्रलय-पयोधि-उमंड में ज्यों गोकुल जदुराय।
त्यों बूड़त बुन्देल-कुल राख्यौ चंपतराय ॥
(छत्रप्रकाश)

† बाहँ जिन्हादी पकड़िए, सिर दीजिए बाहँ न छोड़िए।
गुरु तेगबहादुर बोलिया, धर पइये धर्म न छोड़िए ॥

पराधीनता-सिंधु मधि डूबत हिन्दू हिन्द ।
तेरे कर पतवार अब, पतधर गुरुगोविन्द ॥ ६१ ॥
धर्म-धुरन्धर, कर्म-धर, बल-धर, बखत-बलन्द ।
जयतु धनुर्धर, तेग-धर, तेगबहादुर-नन्द ॥ ६२ ॥
असि-व्रत धार्‌यौ धर्म पै, उमँगि उधार्‌यौ हिन्द ।
किये सिक्ख तें सिंह सब, धनि-धनि, गुरुगोविन्द ॥ ६३ ॥
दसवें गुरु के राज में रही हिन्द-पत-लाज ।
औरँगशाही पै गिरी वाहगुरू की गाज ॥ ६४ ॥
बेटी राखी आर्य-कुल, चोटी राखी सीस ।
राखी गुरुगोविन्द कै औरँगशाही खीस ॥ ६५ ॥
रहती कहँ हिन्दून की ऐंड़, आन अरु बान ।
ढाल न होती आनि जो गुरुगोविन्द-कृपान ॥ ६६ ॥
संघ-शक्ति-व्रत-मित्र, कै बृषगत बिप्लव-मित्र ।
कै पवित्र बलि-चित्र-पट गुरुगोविन्द-चरित्र ॥ ६७ ॥
दिखी न दूजी जाति कहुँ, सिक्खन-सी मजबूत ।
तेगबहादुर-से पिता, गुरुगोविँद-से पूत ॥ ६८ ॥

सिंह-शावक-बलिदान

"माथ रहौ वा ना रहौ, तजैं न सत्य अकाल ।"
कहत-कहत ही चुनि गये, धनि, गुरुगोविँद-लाल* ॥ ६९ ॥

* जोरावरसिंह और फ़तहसिंह, जो क्रमशः नौ और सात वर्ष के थे ।

भाई बंदा

मति सोवै सुख-नींद यौं, अब, सूबा सरहिन्द* !
गाजत बंदा सीस पै पठयौ गुरु गोविन्द ॥ १०० ॥

करि गुरु गोविँद-बँदगी बंदा बीर महान ।
ककरी-लौं काटे किते मरद मारि मैदान ॥ १०१ ॥

खालसा†

सेवै नित गुरु-खालसा, है न लालसा और ।
वाह गुरू की मेहर सों, फते होय सब ठौर‡ ॥ १०२ ॥

---

* इसीने गुरु गोविन्दसिंह के दोनों कुमार जोरावरसिंह और फ़तहसिंह को शहर-पनाह की दीवार में ज़िन्दा चुनवा दिया था।

† खालिस अर्थात् निर्मल। इस पंथ की स्थापना गुरु गोविन्दसिंहने की। इक्कीस शिक्षाएँ इस में मुख्य मानी गई हैं।

‡ "वाह गुरु का खालसा, वाह गुरु की फ़ते"—अर्थात्, जहाँ वाह गुरु, परमात्मा, का खालसा (निर्मल) पंथ है, वहाँ फते अर्थात् विजय भी अवश्य है। गीता में लिखा ही है—

यतो कृष्णस्ततो धर्मः, यतो धर्मस्ततो जयः ।

पाँचवाँ शतक

शिव-बन्दना

दलौ त्रिशूल त्रिशूल-धर ! त्रिभुवन-प्रलयंकारि ।
हर, त्र्यम्बक, त्रैलोक्य-पर, त्रिदश-ईश, त्रिपुरारि ॥ १ ॥

दुर्गादास राठौर

तूँ अठौर* राठौर-कुल, भयौ ठसक की ठौर ।
दुर्जय दुर्गादास ! धनि, धीर-बीर-सिरमौर ॥ २ ॥

धनि, दुर्गा राठौर ! तूँ दल्यौ मुगल-दल-दाप ।
लखियतु मरुथल पै अजौं, तुव निज न्यारी छाप ॥ ३ ॥

ठौर-ठौर ठुकराय अरि, धनि, दुर्गा राठौर !
राखी ठकुराई-ठसक, मारवाड़-सिरमौर ! ॥ ४ ॥

---

*बादशाह औरङ्ग़ज़ेबने जब जोधपुर-नरेश महाराज यशवंतसिंह को धोके से मरवा डाला और उनकी रानी एवं नवजात बालक अजितसिंह का कोई रक्षक न रहा, तब वीरवर दुर्गादास राठौरने ही अपने बाहु-बल से राठौर-वंश की मान-मर्यादा अक्षुण्ण रखी थी ।

धुरमंगद

साहस-सो साहस कियौ धुरमङ्गद* सतसंध ।
कूदि जरति हथिसार में दिये काटि गज-बंध ॥ ५ ॥
बिकट बाँक बानैत, त्यौं उद्भट निपट निसाँक ।
धुरमङ्गद की धाक ज्यौं हनूमान की हाँक† ॥ ६ ॥

लोकमान्य तिलक

ब्रह्मनिष्ठता ब्यास की, जामदग्न्य कौ ओज ।
दीपत इन दोऊन तें तिलक-सुनैन-सरोज ॥ ७ ॥
जाहि भूलि भटकत फिरे हम कुरंग बन भूरि ।
धन्य तिलक ! बोधित करी जन्मजात कस्तूरि‡ ॥ ८ ॥

---

*यह ओरछा (बुन्देलखंड) राज्यान्तर्गत 'पलेरा' जागीर के स्वामी थे । यह बड़े वीर और साहसी थे । एकबार दिल्ली में, जब कि यह ओरछा-नरेश के साथ वहाँ थे, बादशाह की हथिसार में आग लग गई । हाथी जलने-भुनने लगे । किसकी हिम्मत, जो जलती हुई आग में कूद कर उनके बंधन काटे ? राव धुरमंगद से कहा गया कि, सिवा आप के कोई यह दुस्साहस का काम नहीं कर सकता । सुनते ही आप हथिसार में कूद पड़े और बावन हाथियों के बंधन अदम्य साहस के साथ काट डाले !

†बाँके गढ़-कोटन में, तोपन की चोटन में,
गोलन की ओटन में बिकट अटान की ।
पोर-पोर पट्टन में, बाँक की झपट्टन में,
ज्वानन के ठट्टन में कट्टन है प्रान की ॥
'लछीराम' लख्खत, बुँदेला अलफक्कड़ है,
अख्खड़ कहाँलौं कहौं अकह कहान की ।
बाक बाक बानीजू की, ताक सीतारामजू की,
धाक धुरमंगद की, हाँक हनुमान की ॥

‡ अर्थात्, 'स्वराज्य हमारा जन्म-सिद्ध अधिकार है' ।

बाल तिलकही में लख्यौ ज्ञान-बिकास अबाध ।
कारागारहुतें कियौ प्रगट रहस्य अगाध ॥ ९ ॥

भावन भारत-भाल कौ तिलक, तिलकही एक ।
व्यक्त भयौ जातें सदा शक्ति-भक्ति-उद्रेक ॥ १० ॥

देशबन्धु दास

देसबन्धु ! या सत्य कौ तुमहीं दियौ प्रमान ।
दीनबन्धुही सों मिलतु दीनबन्धु भगवान ॥ ११ ॥

'भयौ दास बिनुगेह तूँ'– कहतु बावरो कौन ?
किते न निज बन्धून के किये हिये निज भौन ॥ १२ ॥

किते अँधेरे द्दगनु कों दियौ न ओज-प्रकास ।
कासु न चित-रंजन कियौ तुम, चितरंजन दास ! ॥ १३ ॥

पुलकि असीसत नहिं किते, लहि मुहँमाँगे दान ।
देसबन्धु-बलि-पौरि पै नित दरिद्र-भगवान ॥ १४ ॥

आर्य-देवियाँ

अपनेही बल आपनी रखनहारियाँ लाज ।
धनि, आरज-कुल-नारियाँ, जग-नारिनु-सिरताज ॥ १५ ॥

जुग-जुग अकह-कहानियाँ कहिहैं कवि-कुल-गाय ।
धनि, भारत-भट-नारियाँ, रह्यौ सुजसु चहुँ छाय ॥ १६ ॥

कर्मादेवी

कुतुबुद्दीन-गज-गंजिनी, गहन-गर्जिनी कोय ।
जय कर्मा रण-सिंहिनी, गृह-गृह जनमौ सोय ॥ १७ ॥

वीरा

धारि पीउ-भुज-माल तब बिलस्यौ प्रेम रसाल ।
अब हौं बीरा[*] धारिहौं समर शत्रु-सिर-माल ॥ १८ ॥
हम तौ छत्रानी कहैं, कहौ कोउ बिगरैल ।
पत राखी मेवाड़ की वाही महल-रखैल ॥ १९ ॥

पन्ना धाय

निज प्रिय लाल कटाय जो प्रभु-सिसु[†] लियौ बचाय ।
क्यों न होय मेवाड़ में पूजित पन्ना धाय ॥ २० ॥

दुर्गावती

धन्य सती दुर्गावती,[‡] करि गढ़मंडल राज ।
रखी गोँड़वानै तुही खड़ग-धरम की लाज ॥ २१ ॥

---

[*] मेवाड़ के महाराणा उदयसिंह की उपपत्नी, जिसने विलास-मग्न महाराणा को अकबर के कैद से छुड़ा कर अपने बाहु-बल और अद्भुत पराक्रम से मुग़ल-सेना को परास्त किया था।

[†] महाराणा साँगा का छोटा पुत्र उदयसिंह, जिसे पन्ना नाम की धायने पृथ्वीराज के दासी-पुत्र वनवीर की तलवार से अपने पुत्र को कटा कर बचा लिया था।

[‡] यह महोबे के चंदेल राजा की पुत्री और गढ़मँडले के गोंड राजा दलपति की रानी थी। दलपति के स्वर्गवासी होते ही अकबर के हुक्म से उज्जैन के नवाब आसफ़ने गढ़मँडले पर चढ़ाई कर दी। महारानी दुर्गावतीने बड़ी वीरता से नवाब के साथ युद्ध किया और मुग़ल-सेना को परास्त कर भगा दिया।

बज्र-कवच तनु, कंध धनु, कर कृपान, कटि ढाल ।
गढ़मंडल-दुर्गावती रण-दुर्गा बिकराल ॥ २२ ॥

मत्त मुगल-दल दलमल्यौ, गढ़मंडल रण ठानि ।
धनि, दुर्गा दुर्गावती ! रखी तुहीं कुल-कानि ॥ २३ ॥

चाँदबीबी

मुगलनु पै झपटी मनों रणसिंहिनि तजि माँद ।
अकबर-मद-मर्दनु कियौ, धनि, सुलताना चाँद ॥ २४ ॥

नीलदेवी

या कटारि सुकुमारि कौ प्रथम चूमि मुख, खान !
तब नीला*-अधरानु कौ मधु-रसु कीजौ पान ॥ २५ ॥

कविवर लाला भगवानदीनजी ने अपनी 'वीर क्षत्राणी' में दुर्गावती के मुख से क्या ही ओजस्वी शब्द कहलाये हैं । देखिये—

"छत्रानी हूँ बिन मारे मरे भूमि न लूँगी ।
दम रहते न रण-भूमि से पग पीछे धरूँगी ॥
मानोगे मेरी बात तो कुछ मैं भी करूँगी ।
अन्याय करोगे तो विकट रूप धरूँगी ॥
चंदेल की बेटी नहीं तलवार से डरती ।
मँडला की महारानी नहीं रण से पछरती ॥"

* पंजाब के नूरपुर नामक एक छोटे राज्य के स्वामी सूरजदेव की वीरपत्नी । एक बार सिपहसालार अबदुश्शरीफ़ख़ाँ सूरने सूरजदेव और उसके पुत्र सोमदेव को गिरफ़्तार कर लिया और परमसुन्दरी नीला पर काम-मोहित हो उसके साथ बलात्कार करना चाहा । नीलादेवीने शरीफ़ख़ाँ को खूब शराब पिला दी और आप भाव-भंगी दिखाती हुई गाने लगीं । जब शरीफ़ख़ाँ मदोन्मत्त हो गया, तब उसकी छाती पर सवार होकर कटार से उसका काम तमाम कर डाला ।

बोलि चूमिहै फिरि कबौं अधर सिंहिनी केर ।
सठ ! छलानी सों कबौं कहिहै 'जानी' फेर ॥ २६ ॥

प्रथम कटारि-कपोल कौ लहि चुंबन सरसाय* ।
तब नीला-अधरानु कौ मधु पीजौ उर लाय ॥ २७ ॥

यह कटारि-प्याली भरी रुधिर-मद्य सों तोर ।
लै निज जानी हाथ सों, खान स्वान बरजोर ! ॥ २८ ॥

लंपट ! भेंटन चहत तूँ जिन भुजान तें धाय ।
क्यों न उखारौं, सठ ! तिन्हैं धरि तुव छाती पाय ॥ २९ ॥

लक्ष्मीबाई

तजि कमलासनु कर-कमलु, गहि तुरंग तरवार ।
कुल-कमला* काली भई, झाँसी-दुरग-दुवार ॥ ३० ॥

हौं देख्यौ अचरजु अबै, झाँसी-दुरग-दुवार ।
दृग-कमलनि अंगार, त्यौं कर-कमलनि तरवार ॥ ३१ ॥

भई प्रगटि रण-कालिका झाँसी-गढ़ परतच्छ ।
सुभट सँहारे लच्छमी, लच्छ-लच्छ करि लच्छ ॥ ३२ ॥

---

* भारतेन्दु हरिश्चन्द्रने इस ऐतिहासिक वीर घटना पर 'नील देवी' नाम का एक सुन्दर गीति-रूपक और कविवर लाला भगवानदीनजी ने एक ओजमयी कविता लिखी है ।

खींचि कटारी निज चोली से, झपटि शरीफहि दिया पछार ।
सब के देखत आनन्-फानन् छाती में धँसि गई कटार ॥
छाती फाड़ रक्त से रंजित मुख में दिया कटारहिं डाल ।
बोली, इसका बोसा लेकर ले मन का अरमान निकाल ॥

[वीर क्षत्राणी]

जय झाँसी-गढ़ लच्छमी, राजति विविध अनूप ।
गति चपला, दुति चंद्रिका, समर चंडिका-रूप ॥ ३३ ॥

सिंह-बधू

प्रेमालिंगनु काल सों करिहै सो ततकाल ।
सिंह-बधू के कंठ जो गेरैगो भुज-माल ॥ ३४ ॥
अब काहे काँपत, अरे सठ ! भेंटन में मीच ।
सिंह-प्रिया कों लायहै कबहुँ फेरि उर नीच ? ॥ ३५ ॥
ह्वैहै छार मलेच्छ ! तैं छ्वै छलानी-अंग ।
रमिहै सिंह-किसोर ही सिंह-किसोरी संग ॥ ३६ ॥

सतीत्व-रक्षा

जो खल चाहै करन तुव, भगिनि ! सती-ब्रत-भंग ।
ता हिय हूलि कटारि यह, रँगियौ हाथ सुरंग ॥ ३७ ॥

सती-प्रताप

पतनी की पत पालिबे इन्द्रजीत-मृतसीस ।
हँस्यौ हहरि, "मम प्रिया कौ परखौ सत, जगदीस !"* ॥ ३८ ॥

---

*महारानी लक्ष्मीबाई

दृढ़ता

तजिहैं मरद न मेंड़ निज, रहैं बकत बदराह ।
करत न कूकर-बृन्द की कछु गयन्द परवाह ॥ ३९ ॥

सूर न चूकत दाँव निज, कूर बजावत गाल ।
दीनों चक्र चलाय हरि, रह्यौ बकत सिसुपाल ॥ ४० ॥

नहिं यामें अचरजु कछू, नाहिँन नीति-अनीति ।
हँसत सदा खल सुजन पै, नई न कछु यह रीति ॥ ४१ ॥

शिकारी

लुकि-छिपि छरछंदन, अरे, खेलत कहा शिकार !
जियत सिंह की पीठि पै क्यों न होत असवार ? ॥ ४२ ॥

लुकि-छिपि मारत, नामरद ! पसु-पंछिनु चहुँफेर ।
पकरि पूँछ ललकारिकैं क्यों न जगावत शेर ? ॥ ४३ ॥

अहे अहेरी ! यह कहा, कादर करत अहेर !
क्यों न लपकि ललकारि तूँ पकरि पछारत शेर ? ॥ ४४ ॥

नैक जीभ के स्वादुलगि दीन मीन मृग मारि ।
नाम लजावत सिंह-स्यों, इमि कायरता धारि ॥ ४५ ॥

लुकि-छिपि बैठि मचान पै करत मृगनु पै वार ।
जियत सिंह की मूँछ कौ क्यों न उखारत बार ? ॥ ४६ ॥

बनत बहादुर बादिहीं दीन मीन मृग मारि।
क्यों न भरत*-लौं बाघ के गिनत दाँत मुख फारि ॥ ४७ ॥

हम बिनुपच्छ पच्छीनु पै कहा उठावत हाथ !
अब के आखेटक, अहो ! भये तुमहुँ, जगनाथ ! ॥ ४८ ॥

ताकत लंपट तीय तन, धरें धनुष पै हाथ।
कहूँ आजुलौं है सुन्यौ मसक मरुत कौ साथ ॥ ४९ ॥

सहत बादि, कामुक ! यहाँ कानन ताप निदाघ।
बारनारि बैठाय सँग कहा मारिहै बाघ ॥ ५० ॥

वीरता और सुकुमारता

बस, काढ़ौ मति म्यान तें यह तीछन तरवार।
जानत नहिं, ठाढ़े यहाँ रसिक छैल सुकुमार ॥ ५१ ॥

बादि दिखावत खोलि इत तुपक तीर तरवार।
सुरमा मीसी के जहाँ बसत बिसाहनहार ॥ ५२ ॥

कवच कहा ए धारिहैं लचकीले मृदुगात।
सुमनहार के भार जे तीन-तीन बल खात ॥ ५३ ॥

कै चढ़िलै असि-धार पै, कै बनिलै सुकुमार।
द्वै तुरंग पै एकसँग भयौ कौन असवार ? ॥ ५४ ॥

---

*शकुन्तला के गर्भ से उत्पन्न महाराज दुष्यन्त का पुत्र।

किमि कोमल अँग ओढ़िहैं असहनीय असि-घाय ।
जिन पै गहब गुलाब की गड़ि खरोट परि जाय ॥ ५५ ॥

पोंछि-पोंछि राख्यौ जिन्हैं नित रमाय रस-रंग ।
समर-घाव ते ओढ़िहैं किमि किसलय-से अंग ॥ ५६ ॥

क्योंकरि डाइन डाकिनी कड़कड़ हाड़ चबाति ?
इत तौ भिल्ली अँगूर की ओंठनु गड़ि-गड़ि जाति ॥ ५७ ॥

जहँ गुलाबहू गात पै गड़ि छाले करि देत ।
बलिहारी ! बखतरनु के तहाँ नाम तुम लेत ॥ ५८ ॥

"झझकत हियैं गुलाब कैं झँवा झँवैयत पाइ* ।"
या बिधि इत सुकुमारता अब न, दई सरसाइ ॥ ५९ ॥

जाव भलैं जरि, जरति जो उरध उसाँसनि देह† ।
चिरजीवौ तनु, रमतु जो प्रलय-अनलु कै गेह ॥ ६० ॥

---

* छालै परिबे कैं डरनु सकै न हाथ छुवाइ ।
झझकत हियैं गुलाब कैं झँवा झँवैयत पाइ ॥

—बिहारी

† आड़े दै आले बसन, जाड़ेहूँ की राति ।
साहसु कै-कै नेह-बस, सखी सबै ढिग जाति ॥
नित संसौ हंसौ बचतु, मनौ सु इहिं अनुमानु ।
बिरह-अगिनि-लपटनु सकतु झपटि न मीचु-सचानु ॥
सुनत पथिक-मुहँ माह-निसि, लुएँ चलति उहिं गाम ।
बिनु बूझैं बिनुहीं सुनैं, जियत बिचारी बाम ॥

—बिहारी

होउ गलित वह अंग, जेहि लागति कुसुम-खरोट* ।
चिरजीवौ तनु, सहतु जो पुलकि-पुलकि पवि-चोट ॥ ६१ ॥
राज-ताज कौ भार किमि सधिहै सिर सुकुमार ।
डगकु डगत-से चलत जो निज तनुहीं के भार ॥ ६२ ॥

वीरता और विलासिता

तिय-पाइल-रवही तुम्हैं किय घाइल, रति-पाल !
सुनि धुकार धौंसानु की ह्वैहै कौन हवाल ॥ ६३ ॥
जिनकौ-जिय-गाहकु बन्यौ अँग-दाहकु रति-नाह ।
असि-बाहकु क्योंकरि वहै ह्वैहैं सहित उमाह ॥ ६४ ॥
कहा भयौ इक दुर्ग जो ढायौं रिपु रणधीर ।
तुम तौ मानिनि-मान-गढ़ नित ढाहत, रति-बीर ! ॥ ६५ ॥

कवित्त

ससिमुखी सूखि गई तब तें ब्याकुल भई, बालमु बिदेसहुँ कों चलिबो जबै कयो ।
दूध दही श्रीफल रुपैया धरि थारी माहिं, माता सुत-भाल जबै रोरि कै टीको दयो ॥
ताँदुर बिसरि गयो, बधू सों कह्यौ, लैआउ, तन तें पसीना छुट्यौ मन तन कों तयो ।
ताँदुर लै आई तिया, आँगन में ठाढ़ी रही, करके पसारिबे में भात हाथ में भयौ ॥

—ग्वाल

* मैं बरजी कै बार तूँ, इत कित लेति करौट ।
पँखुरी लगैं गुलाब की परिहै गात खरौट ॥

—बिहारी

ऐहैं, कहु, केहि काम ए कादर काम-अधीर ।
तिय-मृग-ईछनही जिन्है है अति तीछन तीर* ॥ ६६ ॥
छिन मुख देखत आरसी, छिन साजत सिंगार ।
कहा करैहै सीस ए बने-ठने सरदार ॥ ६७ ॥
अंत न ऐहैं काम ए रसिक छैल सरदार ।
रहि जैहै दरपनु लिये करत साज-सिंगार ॥ ६८ ॥
त्यागि सकत नहिं नैक जे चटक-मटक-अभिमान ।
कहा छाँड़िहै युद्ध मे ते अजान प्रिय प्रान ॥ ६९ ॥
चटक-मटकही ते तुम्है नाहिं नैक अवकास ।
अवसर पै करिहौ कहा तुम विलासिता-दास ? ॥ ७० ॥
सुमन-सेज सँग बाल तुम पौढ़े करि सिंगार ।
को भीषम-सर-सेज की अब पत-राखनहार ॥ ७१ ॥
उत गढ़-फाटक तोरि रिपु दीनी लूट मचाय ।
इत लंपट ! पट तानि तै परयौ तीय उर लाय ॥ ७२ ॥
उत रिपु लूटत राज, इत दोउ मत्त रति माहिं ।
उन गर नाही नहिं छुटै, इन गर बाही नाहिं ॥ ७३ ॥

---

* लागत कुटिल कटाच्छ-सर, क्यों न होहिं बेहाल ।
कढ़त जि हियहिं दुसाल करि, तऊ रहत नटसाल ॥

—बिहारी

मान छुट्यौ, धन जन छुट्यौ, छुट्यौ राजहू आज ।
पै मद-प्याली नहिँ छुटी, बलि, बिलासि-सिरताज ! ॥ ७४ ॥

आवतु आपु बिनासु तहँ, जहँ बिलसंत बिलासु ।
एक प्रान द्वै देह मनु उभय बिलासु बिनासु ॥ ७५ ॥

जित बिनासु आवन चहतु, पठवतु प्रथम बिलासु ।
मति बिलासु मुहँ लाइयौ, ऐहै नतरु बिनासु ॥ ७६ ॥

नयन-बानही बान अब, भ्रुवही बंक कमान ।
समर केलि बिपरीतही मानत आजु प्रमान ॥ ७७ ॥

निदरि प्रलय बाढ़त जहाँ बिप्लव-बाढ़-बिलास ।
टापतही रहि जात तहँ टीप-टाप के दास ॥ ७८ ॥

कवि-पतन

बरषत बिषम अँगार चहुँ, भयौ छार बर बाग ।
कवि-कोकिल कुहकत तऊ नव दंपति-रति-राग ॥ ७९ ॥

सुख-संपति सब लुटि गयौ, भयौ देस-उर घाय ।
कंकन-किंकिनि का अजौं सुनत झनक कविराय ! ॥ ८० ॥

रही जाति जठरागि तें झझरि भाजि अकुलाय ।
तुम्हैं परी अभिसार की अजहुँ हाय, रसराय ! ॥ ८१ ॥

तिय-कटि-कृसता कौ कविनु नित बखानु नव कीन ।
वह तौ छीन भई नहीं, पै इनकी मति छीन ॥ ८२ ॥

कहत अकथ* कटि छीन, कै कनक-कूट कुच पीन ।
छीन-पीन के बीच वै भये आजु मति-हीन ॥ ८३ ॥

नीति-बिहूनो राज ज्यौं, सिसु ऊनो बिनु प्यार ।
त्यौं अब कुच-कटि-कवित बिनु सूनो कवि-दरबार ॥ ८४ ॥

जागत-सोवत, स्वप्नहूँ, चलत-फिरत दिन-रैन ।
कुच-कटि पै लागे रहैं इन कवीनु के नैन ॥ ८५ ॥

आज-कालि के नौल कवि सुठि सुंदर सुकुमार ।
बूढ़े भूषण पै करैं किमि कटाच्छ-मृदु-वार ॥ ८६ ॥

वारमुखी में वार अब, युवति-मान मे मान ।
रँग अबीर में बीर त्यौं कहियत कोस प्रमान ॥ ८७ ॥

कमल-हार, झीने बसन, मधुर बेनु अब छाँड़ि ।
मौलि-माल, बज्जर कवच, तुमुल-संख कवि, माँड़ि ॥ ८८ ॥

तजि अजहूँ अभिसारिका, रतिगुप्तादिक, मन्द !
भजि भद्रा, जयदा सदा शक्ति, छाँड़ि जग-द्वन्द ॥ ८९ ॥

करत किधौं उपहासु, कै ठकुरसुहाती आज ।
कहा जानि या भीरु कों कहत भीम, कविराज ॥ ९० ॥

---

* बुधि अनुमान, प्रमान श्रुति किये नीठि ठहराइ ।
सूछम कटि परब्रह्म लौं अलख, लखी नहिं जाइ ॥

—बिहारी

अब नख-सिख-सिङ्गार में, कवि-जन ! कछु रस नाहिँ ।
जूठन चाटत तुम तऊ मिलि कूकर-कुल माहिँ ॥ ९१ ॥
मरदाने के कवित ए कहिहैं क्यों मति-मन्द ।
बैठि जनाने पढ़त जे नित नख-सिख के छंद ॥ ९२ ॥

व्यर्थ चेष्टा

काहि सुनावत बीररसु, बृथा करत चित खेद ।
हैं ए रसिक सिँगार के, सुनत नायिका-भेद ॥ ९३ ॥
कहा बकत इत मूढ़ ! तू, क्यों न रहत गहि मौन ।
सुनिहै सरस समाज में निरस युद्ध-रस कौन ? ॥ ९४ ॥

अनहोनी

बँधवाये सुत सिंह के बिनु रद-नख करवाय ।
सस-सृगाल-हाथनि, अहो ! भलो नाथ, यह न्याय ॥ ९५ ॥
चूमत चरन सियार के गज-मद-मर्द्दन शेर ।
झपटत बाजनु पै लवा, अहो ! दिननु के फेर ॥ ९६ ॥
दई ! दिननु के फेर तें भई औरही साज ।
हुते सिलहखाने जहाँ, तहँ मयखाने आज ॥ ९७ ॥
भली, नाथ, लीला रची ! भलो अलाप्यौ राग !
नर ओढ़ी सिर ओढ़नी, नारिन बाँधी पाग ॥ ९८ ॥

दुर्लभ पदार्थ

किम्मत हिम्मत की नहीं, नहिँ बल-बीरज-तोल ।
आँक्यो गयौ न आजुलौं, बीर-मौत्ति कौ मोल ॥ ९९ ॥

फरति न हिम्मत खेत में, बहति न असि-व्रत-धार ।
बल-बिक्रम की बोरियाँ बिकति न हाट-बजार ॥ १०० ॥

छठा शतक

नाद-वन्दना

सहस-फनी-फुङ्कार औ काली-असि-झङ्कार ।
बन्दौं हनु-हुङ्कार, त्यौं राघव-धनु-टङ्कार ॥ १ ॥

वे और ये

जिनकी आँखन तें रहे बरसत ओज-अँगार ।
तिनके बंसज झेंप तें द्दग झाँपत सुकुमार ॥ २ ॥
रहे रँगत रिपु-रुधिर सों समर केस निरवारि ।
तिनके कुल अब हीजरे काढ़त माँग सँवारि ॥ ३ ॥
धारत हे रण-भूमि जे अरि-मुंडनु कौ हार ।
तिनके कुलके करत अब सरस सुमन-सिंगार ॥ ४ ॥
रह्यौ सदा जिन हाथ कौ यार एक हथयार ।
लखियतु अब तिन करनु में रमन-बाल-हित हार ॥ ५ ॥
झूमत हे जहँ मत्त ह्वै सहजसूर दिन-रैन ।
लटकि लजीले छैल तहँ मटकि नचावत नैन ॥ ६ ॥

कितना भारी अंतर !

मरत पूत उत दूध बिनु, बिलपत बिकल किसान ।
इत बैठ्यौ, सठ ! करत तैं सँग कामिनि मद-पान ॥ ७ ॥

बृष-रबि-आतप-तपि कृपक मरत कलपि बिनु नीर ।
इत लेपत तुम अरगजै, बिरमि उसीर-कुटीर ॥ ८ ॥

उत हाकिम रैयत-रकत करत पान उर चीर ।
इत पीवत तैं मद, अरे नृपति मनोज-अधीर ! ॥ ९ ॥

उत आतप अरु तपत भू, इत उसीर घनसार ।
रैयत राजा में, कहौ, ह्वै है किमि सहकार ॥ १० ॥

उत भूखे क्रंदन करत कलपि किसान मजूर ।
इत मसनद पै मद-छके सुनत अलाप हुजूर ॥ ११ ॥

निर्जीव राजपूत

दलित सीस पै बाँधिकैं रजपूती की पाग ।
कियौ, निलज ! नट-लौं तऊ बल-बिक्रम कौ स्वाँग ॥ १२ ॥

तुम रजपूतनु तें कहा रजपूती की आस ?
प्रमदा-मदिरा-माँस के भये आजु तुम दास ॥ १३ ॥

कुल में दाग लगाय, धिक ! बन्यौ फिरत रजपूत ।
गरि-गरि गिर्यौ न गर्भ तें कादर, क्लीब, कुपूत ! ॥ १४ ॥

मजबूती तौ कहुँ नहीं, है सब काम निकाम ।
कहिबे कों बस रहि गयौ रजपूती कौ नाम ॥ १५ ॥

लखि जिनके मजबूत भुज काँपत हे यम-दूत ।
भारत-भू पै अब कहाँ वै बाँके रजपूत ॥ १६ ॥

कहा तुम्हैं तरवार सों, है सब सूखी शान ।
मूठ सुनहरी चाहिए, और मखमली म्यान ॥ १७ ॥

कुल-कलंक कादर कुटिल व्यभिचारी बिनलाज ।
करत दुष्ट दावा तऊ रजपूती कौ आज ॥ १८ ॥

चाटत जग-पग स्वान-ज्यौं, फिरत हलावत पूँछ ।
बनत कहा अब मरद तैं, यौं मरोरिकैं मूँछ ॥ १९ ॥

धिक्कार

तो देखत तुव भगिनि के खैंचत पामर केस ।
जानि परत, या बाहु में रह्यौ न बल कौ लेस ॥ २० ॥

रे निलज्ज! जिनके अछत, अरिहिँ झुकायौ माथ ।
अब तिन मूँछनु पै कहा पुनि-पुनि फेरत हाथ ॥ २१ ॥

निज चोटी-बेटीन की सके राखि नहिँ लाज ।
धिक धिक, ठाढ़ी मूँछ ए, धिक धिक, डाढ़ी आज ॥ २२ ॥

भखत माँसु, मदिरा पियत, ताकत पर-तिय-द्वार ।
धिक, तेरो जीवन-मरन, लंपट चोर लबार ! ॥ २३ ॥

मरिहै नहिँ कबहूँ कहा, धँसत न जो रण माँझ ।
उपज्यौ कूख कुपूत तैं, रही न क्यों विधि ! बाँझ ॥ २४ ॥
भाज्यौ पीठि दिखाय यौं, धँस्यौ न जूझन माँझ ।
तो सम कादर-जनन तें, भलि छत्रानी बाँझ ॥ २५ ॥
जरति जाति जठरागि तें, जहँ-तहँ हाहाकार ।
देत भोज तैं नित तऊ साजि साज-दरबार ॥ २६ ॥
देखि दीन दुर्दलनहूँ उठत न जाकौ बाहु ।
ग्रसतु तासु सरबसु-ससिहिँ पर-प्रताप-बल-राहु ॥ २७ ॥
निजमुख निज कथनी कथत, नितप्रति सौ-सौ बार ।
भट तें भाट भये भले बिरद-पुकारनहार ॥ २८ ॥
अछत कर्ण, कृप, द्रोण त्यौं भीष्म, पार्थ अरु भीम ।
खिँचि पंचाली-पटु रह्यौ, धिक बल-बीरज-सीम ॥ २९ ॥

आज कहाँ

पराधीनता-जलधि में बूड़त सुकृत-समाज ।
कहाँ उधारक धरम कौ, तारक आज जहाज ॥ ३० ॥
दै हाँके हाँके हठी, रण-थल सुभट अजैत ।
निपट निसाँके अब कहाँ, बल-बाँके बानैत ॥ ३१ ॥
कहँ अब रण-सरि-पैरिबो, कहँ बल-बिक्रम-तेज ।
रवि-मंडल-भेदनु कहाँ, कहँ पौढ़नु सर-सेज ॥ ३२ ॥

कहँ प्रताप, कहँ दाप वह, कहाँ आन कहँ बान ?
कहाँ ऐंड़, कहँ मेंड़ अब, है सब सूखी शान ॥ ३३ ॥

नहिं बल, नहिं बिक्रम कहूँ, जहँ-तहँ दीन अधीन ।
भई भूमि यह आजु का साँचेहुँ बीर-बिहीन ॥ ३४ ॥

अब, कोयल ! वह ऋतु कहाँ, कहँ कूजन तरु-डार ?
वह रसाल-रस-बौर कहँ, वह बन-बिहँग-बिहार ॥ ३५ ॥

धीर बीर-बर वै कहाँ, हठ-हमीर जग-बीच ।
अब तौ इत नित बढ़ि रहे निलज नराकृति नीच ॥ ३६ ॥

परशुराम-स्मरण

जित देखौ तित बढ़ि रहे कुल-कुठार भुवि-भार ।
क्यों न होत पुनि आजु वह परसुराम-अवतार ॥ ३७ ॥

देखि-देखि मद-चूर ए कादर, क्रूर कुसाज ।
जामदग्न्य के परसु की आवति सुधि पुनि आज ॥ ३८ ॥

भावी इतिहास

देखि दास-ही-दास चहुँ, इमि क्यों होत निरास ।
पढ़िहौ तुम कछु औरही या युग कौ इतिहास ॥ ३९ ॥

ह्वैहै पुनि स्वाधीन तुम, सदा न रहिहौ दास ।
या युग के बलि-दान कौ लिखियौ तब इतिहास ॥ ४० ॥

व्यर्थ युद्ध

नाहिँ धर्म, नहिँ देस-हित, नाहिँ जाति कौ हेत ।
निज-निज स्वारथ पै, अहो ! रँगत रकत सों खेत ॥ ४१ ॥

करत शक्ति-व्यय व्यर्थ जे बिनु बिवेक, बिनु हेतु ।
मेटत ते सुख-सान्ति कौ सहज सनातन सेतु ॥ ४२ ॥

परधरती परतीय पै चेतहुँ भये अचेत ।
कटे न केते सूरमा, रँगे न केते खेत ॥ ४३ ॥

फूट

फूट्यौ, पै टूट्यौ न जो, भयौ कौन अस मर्द ।
जुग के बिलगेहू कहूँ रही खेत्त में नर्द ॥ ४४ ॥

राजपूत, सिख, मरहठे नठे बुँदेल्ल, बघेल्ल ।
अरी फूट ! या देस में रच्यौ कौन यह खेल्ल ॥ ४५ ॥

मेरु-दंड या देस कौ कुलिस-खंड अति चंड* ।
सहजैं, हा ! गृह-फूट तें भयौ टूटि सतखंड ॥ ४६ ॥

---

*जग में घर की फूट बुरी ।
घर की फूटहिं सों बिनसाई सुबरन-लंक पुरी ॥
फूटहिं सों सब कौरव नासे भारत-युद्ध भयौ ।
जाकौ घाटो या भारत में अबलौं नहिं पुजयौ ॥
फूटहिं सों जयचन्द बुलायौ जवनन भारत-धाम ।
जाको फल अबलौं भोगत सब आरज होइ गुलाम ॥
फूटहिं सों नवनंद बिनासे, गयौ मगध कौ राज ।
चन्द्रगुप्त को नासन चाह्यौ आपु नसे सहसाज ॥

भर्‌यौ [illegible]-पुंज तें यह भारत-ब्रह्माण्ड ।
क्यों न होय गृह-भेद तें गृह-गृह लंका-काण्ड ॥ ४७ ॥
है जहँ 'आठ कनौजिया नौ चूल्हे' की रीति ।
तहाँ परस्पर प्रीति की कहा पढ़ावत नीति ॥ ४८ ॥
हैं ठाढ़े जा डार पै, काटत सोइ मतिमंद ।
घर-घर भारत-भाग तें भरे भूरि जयचंद ॥ ४९ ॥

विजैया दशमी

जहाँ पराजयही बिजय मानत सभ्य-समाज ।
कहा जानि आयौ तहाँ फेरि दसहरो आज ॥ ५० ॥
नीलकंठ* तन पेखि धरु नीलकंठ-सुभध्यान ।
तुमहूँ परहित-हेतु यौं करौ हलाहल-पान ॥ ५१ ॥

अब समय कहाँ ?

लियौ तोरि दृढ़ गढ़ जबै, कहा सोचि तब जात ?
दीप सँजोवत अब कहा, जब ह्वै गयौ प्रभात ॥ ५२ ॥
आजु-काल्हि कब तें करत, भये न कबहुँ तयार ।
घत्ताघत्ती उत ह्वै रही; इत माँजत हथयार ॥ ५३ ॥

जो जग में धन मान और बल आपुन राखन होय ।
तौ अपुने घर में भूलेहूँ फूट करौ मति कोय ॥
—भारतेन्दु हरिश्चन्द्र

* विजयादशमी के दिन नीलकंठ पक्षी का दर्शन शुभ और मांगलिक माना जाता है ।

अब-अब तौ कब तें कहत, सध्यौ न अबलौं तंत्र ।
वह अब कब ऐहै, जबै ह्वैहै सिद्ध सुमंत्र ॥ ५४ ॥

गीता-रहस्य

अनासक्ति सों जोरिये कार्यकर्म-अनुरक्ति* ।
ज्यौं-त्यौं करि आराधिये, सुचित साधिये शक्ति ॥ ५५ ॥
'अद्वैतामृत-वर्षिणी' मानत विज्ञ-समाज ।
जानत गीता अज्ञ हम केवल राष्ट्र-जहाज ॥ ५६ ॥

अयोग्य नरेश

अपनेही तनु की न जौ तुम पै होति सँभार ।
झूठमूठ फिरि बनत क्यों प्रजा-राज-रखवार ? ॥ ५७ ॥
रैयत-भार सँभारिहैं किमि सुकंध सुकुमार !
जीवनहू जब ह्वैरह्यौ नितहीं भार पहार ॥ ५८ ॥
जिमि आँधर-कर आरसी, जिमि बानर-कर बीन ।
तिमि रैयत अवरेखिये नृपति-प्रमत्त-अधीन ॥ ५९ ॥
नहिं चाहक अपनेनु के, नहिं गाहक-रखवार ।
ए तौ मधुप बिदेस के रसिक रिझावनहार ॥ ६० ॥

* तस्मादसक्तः सततं कार्यं कर्म समाचर । [गीता]

या बसुधा कों भाग भरि भोगत भुज मजबूत* ।
कहा भोगिहैं भूमि ए कादर क्रूर कुपूत ॥ ६१ ॥

शायर औध-नवाब[†] की करूँ कहा तारीफ ।
राज-काजु कों पीठि दै सोचत बैठि रदीफ ॥ ६२ ॥

नहिँ बाँधतु बटपार, जे रैयत करत खराब ।
बाँधतु बैठ्यौ काफिया, वाजिदअली नवाब ॥ ६३ ॥

भूलेहुँ कबहुँ मदान्ध कों जनि दीजौ अधिकार ।
मतवारे के हाथ कहुँ सोंपत कोउ हथयार ॥ ६४ ॥

स्वदेश-विद्रोह

भूलेहुँ कबहुँ न जाइये देस-बिमुखजन पास ।
देस-बिरोधी-संग तेँ भलो नरक कौ बास ॥ ६५ ॥

सुख सों करि लीजै सहन कोटिन कठिन कलेस ।
बिधिना ! वै न मिलाइयौ, जे नासत निज देस ॥ ६६ ॥

सिव-बिरंचि-हरि-लोकहूँ बिपत सुनावै रोय ।
पै स्वदेस-बिद्रोहि कों सरनु न दैहै कोय ॥ ६७ ॥

---

* वीरभोग्या वसुन्धरा ।

† लखनऊ के सुप्रसिद्ध रसिक नवाब वाजिदअली शाह, जो कविता में अपना तखल्लुस 'अखतर' रखते थे ।

गो-नाश

गो-धन, गोवर्द्धन-धरन, गोकुलेस, गोपाल !
रँगत-रँगत गो-रकत सों भई भूमि तुव लाल ॥ ६८ ॥

लाल ! तिहारी लाड़िली, तुव गोकुल की गाय ।
कटति आजु गोपाल ! हा ! क्यों न बचावत धाय ॥ ६९ ॥

चोरि-चोरि चाख्यौ जहाँ माखन, गोकुल-राज !
टुक, देखौ गो-रुधिर की बहति धार तहँ आज ॥ ७० ॥

गेरत हे, गोपाल ! तुम जहँ केसर घनसार ।
टुक, देखौ तहँ आजु हरि ! बहति गो-रुधिर-धार ॥ ७१ ॥

दंडक-बन मुनि-अस्थि लखि दैत्य-दलन-प्रन-कीन* ।
देखत गो-बध नाथ ! क्यों आजु मौन गहि लीन ? ॥ ७२ ॥

क्या से क्या ?

जहँ कीनों, गोपाल ! तुम निज गो-रस-छिरकाव ।
देखि आजु मरुभूमि-सो क्यों न होत हिय घाव ? ॥ ७३ ॥

---

* अस्थि-समूह देखि रघुराया । पूछा मुनिन्ह लागि अति दाया ॥
जानतहू पूछिय कस स्वामी । सबदरसी तुम अंतरजामी ॥
निसिचर-निकर सकल मुनि खाये । सुनि रघुनाथ नयन-जल छाये ॥
निसिचर-हीन करउँ महि भुज उठाइ पन कीन ।
सकल मुनिन्ह के आश्रमन्हि जाय-जाय सुख दीन ॥

[रामचरितमानस]

जहँ लुढ़कावै, लाल ! तुम नित गो-रस, गोपाल !
मिलै न जलहू आजु तहँ, ग्वाल-बाल बेहाल ॥ ७४ ॥

जगत् का अमिथ्यात्व

परखतु जीवन-जौहरी प्रान-रत्न जहँ गूढ़ ।
ता साँचे संसार कों कहत असाँचो मूढ़ ॥ ७५ ॥
जा जग की रोटीनि तें सूझतु अलख अनंत ।
मिथ्या ताकों कहत ए निलज निठल्ले संत ॥ ७६ ॥

कादर साधु-संत

कनक-कामिनी में पगे, रँगे राग में आज ।
इन सठ मठधारीनु पै तौंहू गिरति न गाज ॥ ७७ ॥
कथत मथत बेदान्त, पै रचत मंद छर-छंद ।
कहु, किमि कामानंद ए ह्वैहैं रामानंद ॥ ७८ ॥
कनक-कामिनी-दास ए साधु स्वारथानन्द ।
रामदास बिरले कहूँ, आजु आतमानन्द ॥ ७९ ॥
फूँकत जे गाजो, अभख भखि, भभूतिया भूत ।
लोलुप लंपट धूत ते बने फिरत अवधूत ॥ ८० ॥

त्याग और आत्मानुभूति

'त्याग-त्याग' कत बकत, रे, राग-त्याग अति दूर ।
त्याग-तागही तें बँधे यती सती अति सूर ॥ ८१ ॥
लेत आत्म-अनुभूति-रस सूर सबल स्वाधीन ।
सके न करि कबहूँ कहूँ आत्म-लाभु बलहीन* ॥ ८२ ॥

अछूत

अपनावत अजहूँ न जे अपने अंग अछूत ।
क्यों करि ह्वैहैं छूत वै करि कारी करतूत ॥ ८३ ॥
जिन पायनु तें जान्हवी भई प्रगटि जग-पूत ।
तिनही तें प्रगटे न ए तुम्हरे अनुज अछूत ? ॥ ८४ ॥
सुर-सरि औ अंत्यज दुहूँ अच्युत-पद-संभूत ।
भयौ एक क्यों छूत, औ दूजो रह्यौ अछूत ? ॥ ८५ ॥
जौ दोउनु कौ एकही कह्यौ जनक जग-बन्द ।
तौ सुर-सरि तें घटि कहा यह अछूत, द्विज मन्द ! ॥ ८६ ॥
महा असिव हू सिव भयौ जाहि सीस पै धारि ।
छुअत न तासु सहोदरनु, रे द्विज ! कहा बिचारि ॥ ८७ ॥

---

*नायमात्मा बलहीने न लभ्यः [उपनिषद्]

मंगला और अमंगला

हाट-बाट नित बैठि निज जोबनु बेचनवारि ।
कही जाति या देस में आजु 'मंगला' नारि ॥ ८८ ॥
बिधवा तरुन-तपस्विनी असि-व्रत-पालनहारि ।
कही जाति या जाति में, हा ! 'अमंगला' नारि ॥ ८९ ॥

बाल विधवा

जहाँ बाल-बिधवा-हियैं रहे धँधकि अंगार ।
सुख-सीतलता कौ तहाँ करिहौ किमि संचार ? ॥ ९० ॥
भलैं सुधा सींचौ तहाँ, फलु न लागिहै कोय ।
जहाँ बाल-बिधवान कौ अश्रु-पात नित होय ॥ ९१ ॥
सुर-तरुहू के फरन की मति कीजौ उत आस ।
जाय बाल-बिधवा निकसि जित ह्वै भरति उसाँस ॥ ९२ ॥

श्वेत और श्याम

उन प्यारे गोरेनु कौ गाहकु सबु संसारु ।
हम न्यारे कारेनु कौ कारो कान्ह अधारु* ॥ ९३ ॥

* गोरी कों गोरे लागत जग अतिही प्यारे ।
मो कारी कों कारे तुम नयननु के तारे ॥
उनकों तो संसार है, मो दुखिया कों कौन ।
कहिये कहा विचार है, जो तुम साधी मौन ॥
—सत्यनारायण कविरत्न

तन कारो, कारो कुदिन, कारो कुल, गृह, गोत ।
पै कुरूप कारेनु कौ हियो न कारो होत ॥ ९४ ॥

कौन काम के सेत घन, नीरस निपट निसार ।
कारेही घन स्याम-लौं बरसावत रस-धार ॥ ९५ ॥

व्यर्थ गर्व

अहे ! गरब कत करत तूँ खरब पाइ अधिकार ।
रहे न जग दसकंध-से दिग्-बिजयी जुग चार ॥ ९६ ॥

कनक-पुरी जब लंक-सी भुरी अछत दसकंध ।
तुव झोपरियाँ काँस की कौन पूछिहै, अंध ! ॥ ९७ ॥

दीन और दीनबंधु-शरण

चूसि गरीबनु कौ लुहू किये गुनाह दराज ।
गहत गरीब-निवाज के कहा जानि पग आज ॥ ९८ ॥

दीननु देखि घिनात जे, नहिं दीननु सों काम ।
कहा जानि ते लेत हैं दीनबन्धु कौ नाम ॥ ९९ ॥

दीन-हीन जानैं कहा सेइ राज-दरबार ।
उनकैं तौ आधार बस दीनबन्धु कौ द्वार ॥१००॥

सातवाँ शतक

केसरी-वन्दना

गौरी-कर-लालितु सदा, पसुपति-पालितु जोय ।
दनुज-दमनु दारुन दरौ दुरित केसरी सोय ॥ १ ॥

विविध

किये भीष्म पै अनल-लौं क्यों हरि, नैन रिसाय ?
जानत हौं, ब्रज-दौ वहै दियौ दृगनि दरसाय* ॥ २ ॥

जाव भलैं कुरुराज पै धारि दूत-वरवेस ।
जइयौ भूलि न कहुँ वहाँ, केसव ! द्रौपदि-केस ॥ ३ ॥

व्योम-बान सररात, औ तड़कि तोप तररात ।
सुथिर अथिर थहरात त्यौं दुर्ग दीह अररात ॥ ४ ॥

---

* 'दावानल-पान' के संबंध की महाकवि विहारी की सूक्ति—
सखि, सोहति गोपाल के उर गुञ्जन की माल ।
बाहर लसति मनों पिये दावानल की ज्वाल ॥

काम न आये आजुलौं है अनाथ-रखवार ।
दिये तोहि भुजदंड ए, कहा जानि करतार ॥ ५ ॥

लेखेंहीं ऋतु लेखियतु, नितप्रति ग्रीषम साथ ।
जठर-ज्वालतें जरि रहे हम अनाथ, जगनाथ† ॥ ६ ॥

कोरी भोरी भावना ऐहै काम न आज ।
बिनु साधैं सुचि साधना नहिँ सरिहै कछु काज ॥ ७ ॥

बलु साँचो निज बाहु-बलु, सीस-दानु सतदानु ।
त्यों साँचो सुठि ध्यानु इक पारथ-सारथि-ध्यानु ॥ ८ ॥

बिनामान तजि दीजियौ स्वर्गहुँ सुकृत-समेत ।
रहौ मान तौ कीजियौ नरकहुँ नित्य निकेत ॥ ९ ॥

अंतहुँ अरिहि न सौंपियौ, करियौ प्रन-प्रतिपाल ।
निज भाँवरि की भामिनी, निज कर की करबाल ॥ १० ॥

बीरबधू ! तुव सौत वह बिजय-बधू नवबाल ।
तासु गरैं गेरति तऊ कहा जानि रति-माल ॥ ११ ॥

भ्रमित भीत अरि-नारियाँ सगबग भाजति जाहिँ ।
आगे देखति नाहिँ, त्यों पाछे हेरति नाहिँ ॥ १२ ॥

---

† पत्राहीं तिथि पाइयत, वा घर के चहुँपास ।
नितप्रति पून्योही रहति, आनन-ओप-उजास ॥

—बिहारी

दनुज-दलन सौमित्रि-सर, मारुति-मुष्टि-प्रहार ।
भीष्म-अतुल बिक्रम, तिहूँ ब्रह्मचर्य-ब्रत-सार ॥ १३ ॥

दृगनि ओज-लाली लसै, रुधिर-पियाली हाथ ।
काल-नटी काली-किलकि नटति कपाली साथ ॥ १४ ॥

साधतु साधनु एकही तजि अनेक बुधि-सीम ।
धनुष-सिद्ध अर्जुन भयौ, गदा-सिद्ध भो भीम ॥ १५ ॥

छुद्र बातहू बृहत की है जग जानन-जोग ।
बन-सिंहन के खाँद* हू खोजत-नापत लोग ॥ १६ ॥

चित्र आर्य-साम्राज्य कौ सक्यौ न कोउ उतारि ?
चीन-ग्रीसहू के गये चतुर चितेरे† हारि ॥ १७ ॥

है सबलनु कौं सूल जो करतु निबल-प्रतिपाल ।
बीर-जननि कौ लाल सो अहै धर्म की ढाल ॥ १८ ॥

करै जाति स्वाधीन जो, साँचो सोइ सुपूत ।
यौंतौ, कहु, केते नहीं कायर कूर कुपूत ॥ १९ ॥

होयँ न, हरि ! जा देस में बज्रपानि बलि-सीस ।
लावनिता ललनान कौं तहँ न दीजियौ, ईस ! ॥ २० ॥

---

* बुन्देलखण्डी शब्द; पैरों के चिन्ह ।

† ह्वेनसाँग, फाहियान, इत्सिङ्ग इत्यादि चीन के एवं मेगास्थनीज़ आदि ग्रीस के यात्री ।

ऐहैं याही ठौर हम, कहा फिरें जग होत ।
जैसे पंछी पोत कौ उड़ि आवतु पुनि पोत* ॥ २१ ॥
देस रसातल जाय किन, इत नित नौल बसंत ।
इन कवीनु की कामिनी रही लाय उर कंत ॥ २२ ॥
जिन समसेरन तें कबौं कटे दुवन-सिर, हाय !
तिन तें काटत घासु तुम अब हँसिया गढ़वाय ॥ २३ ॥
को न अनय-मग पगु धर्‌यौ लखि इहि कुमति-कुदानु ?
न्याय-भ्रष्ट भे भीष्महू भखि दुर्योधन-धानु ॥ २४ ॥
अथयौ सो अथयौ, न पुनि उनयौ भीषम-भान ।
आर्य-शक्ति-जय-पद्मिनी परी तबहिं तें म्लान ॥ २५ ॥
तिथि-संबत पुरखानु के सुनि चौंकत चकराय ।
मनु गाथा सस-सृङ्ग की तुह्मैं सुनाई आय ॥ २६ ॥
भीरु छिपावतु जीव ज्यौं, कृपनु छिपावतु दामु ।
सूर छिपावतु शक्ति त्यौं, चतुर छिपावतु नामु ॥ २७ ॥
यथा राम-रावण-समर वारिद-नाद-विहीन ।
भारत-युद्ध अपूर्ण त्यौं बिना कर्ण प्रण-पीन ॥ २८ ॥
'जराधीन, अँगछीन हौं, दीन, दंत-नख-हीन ।'
नहिं ऐसी चिंता कहूँ कबहुँ केहरी कीन ॥ २९ ॥

* मेरो मनु अनत कहाँ सचुपावै ।
जैसे उड़ि जहाज कौ पंछी पुनि जहाज पै आवै ॥ —सूरदास

या कलि में बलि-धर्म कौ कियौ दोइ उद्धार ।
गहिरवार पंचम[*] बली, अरु जगदेव पवाँर[†] ॥ ३० ॥

रचि-रचि कोरी कल्पना बहुत जल्प ना मूढ़ !
सहज सती अरु सूर को गति-रहस्य अति गूढ़ ॥ ३१ ॥

निबल, निरुद्यम, निर्धनी, नास्तिक, निपट निरास ।
जड़, कादर करि देतु है नरहिं अंधविश्वास ॥ ३२ ॥

रकत-माँसु सब भखि लियौ, पंजर डार्यौ तोरि ।
कहा मिलैगो तोहि अब, निर्दय ! हाड़ चिचोरि ॥ ३३ ॥

भाजत भग्गुल भभरि जहँ, खुलि खेलत तहँ बीर ।
जरत सुरासुर जाहि लखि, पियत ताहि सिव धीर ॥ ३४ ॥

कठिन राम कौ काम है, सहज राम कौ नाम ।
करत राम कौ काम जे, परत राम सों काम ॥ ३५ ॥

मतवारे सब ह्वै रहे मतवारे मत माहिँ ।
सिर उतारि सतधर्म पै कोउ चढ़ावत नाहिँ ॥ ३६ ॥

---

* काशीश्वर वीरभद्र गहिरवार का सबसे छोटा पुत्र जगदास था। इसे पंचम भी कहते हैं। जगदासने अपने भाइयों से अपमानित होकर विन्ध्य-वासिनी देवी को अपना सिर चढ़ाना चाहा, पर देवीने प्रकट हो तलवार पकड़ ली और इसे वर-दान दिया कि "जा, तेरी जय होगी और तेरे वंशधर मध्यभारत पर राज्य करेंगे।" पंचमने जो खड्ग अपना सिर काटने के लिये उठाया था, वह उसके सिर पर लगा और उससे रक्त की एक बूँद पृथ्वी पर गिर पड़ी। इसी बूँद के गिरने के कारण पंचम के वंशज 'बुंदेला' कहे जाते हैं।

† जगदेव पँवारने अपने स्वामी का प्राण बचाने के लिये स्वयं अपना सिर देवी को चढ़ा दिया था।

तजि देती जौपै कहूँ, कोइल ! काग-कुठौर ।
तौ होती पच्छीनु में साँचेहुँ तैं सिरमौर ॥ ३७ ॥

सिंह-शावकनु के भये शिक्षक आजु शृगाल ।
एइ सिखैहैं अब इन्हैं गज-मर्द्दन कौ ख्याल ! ॥ ३८ ॥

हम गंगोदक, हम गगन, हम दीपक, हम भान ।
यही तुम्हैं लै बूड़िहै कुल-कोरो-अभिमान ॥ ३९ ॥

जदपि रोष दोऊ करति लखि-लखि परदृग लाल ।
तदपि कहाँ खल-खंडिनी, कहाँ खंडिता बाल ॥ ४० ॥

चूसि गरीबनु कौ रकतु करत इन्द्र-सम भोग ।
तउ 'गरीब परवर' उन्हैं कहत अहो, ए लोग ! ॥ ४१ ॥

उत तें तौं हाड़ा* हठी, इत बुँदेल† बलवान ।
अरि-अनीक की गेंद कै रच्यौ चारु चौगान ॥ ४२ ॥

---

* बूँदी के महाराज हाड़ा छत्रसाल। कविवर भूषण, मतिराम और लालने इनकी वीरता के कई पद्य लिखे हैं। कविवर मतिराम—औरंगज़ेब-दारा-युद्ध के अवसर पर—इनकी वीर-गति पर लिखते हैं—

औरँग दारा जुरे दोउ जुद्ध, भये भट क्रुद्ध विनोद बिलासी।
मारू बजै 'मतिराम' बखानैं भई अति अस्त्रन की बरखा-सी॥
नाथ-तनै तिहिं ठौर भिरयौ, जिय जानिकैं छत्रिन कों रन कासी।
सीस भयौ हर-हार-सुमेरु, छता भयौ आपु सुमेरु कौ बासी॥

चले चंदवान घनबान औ कुहूकबान, चलत कमान धूम आसमान छ्वै रहो।
चली जमडाढ़ैं बाढ़वारैं तरवारैं जहाँ लोह आँच जेठ के तरनिमान वै रहो॥
ऐसे समै फौजैं बिचलाईं छत्रसालसिंह अरि के चलाये पायँ बीररस च्वै रहो।
हय चले हाथी चले संग छोड़ि साथी चले, ऐसी चलाचली में अचल हाड़ा ह्वै रहो॥

—भूषण

† बुँदेलखंड-केसरी महाराज छत्रसाल।

दोनों वीरश्रेष्ठ छत्रसालों के संबंध में महाकवि भूषण कह गये हैं—

बनत क्रोध-जित निबल नर धारि छमा अभिराम ।
करत कलंकित क्लीब ज्यौं ब्रह्मचर्यव्रत-नाम ॥ ४३ ॥

उपमा भट-भुजदंड की तो सँग जा दिन दीन ।
तबही तें, गज-सुण्ड ! तैं थिरता पलहु गही न ॥ ४४ ॥

धर्म-निरत सँग द्वेष कै कहाँ बचैहैं प्रान ?
दुर्वासा-हरि-चक्र कौ गयौ भूलि उपखान ! ॥ ४५ ॥

कहँ गूलर-बासी यहै, कहँ वह बिश्व-बिहार !
कहँ यह पोखरि मैं ढुकी, कहँ वह पारावार ! ॥ ४६ ॥

बिन सींचे निज हीय तें सद्य रक्त-रस-धार ।
कहँ स्वधर्म की लहलही रही डहडही डार ॥ ४७ ॥

आयौ, बलि, रति-युद्ध तें भाजि, भीरु ! दै पीठि ।
अब काहे असि-बाल पै फिरत लगाये डीठि ॥ ४८ ॥

पावसही मैं धनुष अब, सरित-तीरही तीर ।
रोदनही मैं लाल दृग, नौरसही मैं बीर ॥ ४९ ॥

टेक-टेक केते कहत, हठहू गहत अनेक ।
पै कहँ वह हम्मीर-हठ*, कहँ प्रताप की टेक ॥ ५० ॥

इक हाड़ा बूँदी-धनी, मरद महेबावाल।
सालत नौरंगजेब कों ये दोनों छतसाल ॥
वै देखौ छत्ता पता, ये देखौ छतसाल।
वै दिल्ली की ढाल, ये दिल्ली ढाहनवाल ॥ —भूषण

* तिरिया तेल हमीर-हठ, चढ़ै न दूजी बार ।

'सुई-नोक भरि भूमि, हरि ! नहिँ दूँगो बिनुयुद्ध* ।'
धनि, दुर्योधन-पैज वह, यद्यपि धर्म-विरुद्ध ॥ ५१ ॥

नैननि नित किन राहिये, तिनकी पायन-धूरि ।
पूरि पैज जे मरद की भये युद्ध मधि चूरि ॥ ५२ ॥

दिन-दूनी लागी बढ़ै बल-बीरज की माँग ।
छैल-चिकनियाँहू रचैँ धीर बीर के स्वाँग ॥ ५३ ॥

भर्‌यौ रक्त नहिँ जिन दृगनि देखि आत्म-अपमान ।
क्योँ न बिधे तिन मेँ, बिधे ! सूल बिषम बिष-बान ॥ ५४ ॥

नभ जिमि बिन ससि सूर के, जिमि पंछी बिनपाँख ।
बिनाजीव जिमि देह, तिमि बिनाओज यह आँख ॥ ५५ ॥

लखि सतीत्व-अपमानहू भये न जे दृग लाल ।
नीबू-नौन निचोरिये, छेदि फोरिये हाल ॥ ५६ ॥

देखि दीन-दुर्दलनहू दहत न जाके अंग ।
ता कुचालि कौ भूलिहूँ कबहुँ न कीजै संग ॥ ५७ ॥

केते गाल फुलायकैँ तमकि तरेरत नैन ।
लखि प्रचंड भुजदंड पै कछुवै करत बनै न ॥ ५८ ॥

'है स्वदेस मख-बेदिका, अरु आहुति मम प्रान' ।
कोटि जन्महूँ, नाथ ! जनि जावै यह अभिमान ॥ ५९ ॥

---

* सूच्यग्रं नैव दास्यामि बिना युद्धेन केशव ।

नहिँ चाहत साम्राज्य-सुख, नाहि स्वर्ग, निर्वान ।
जन्म-जन्म निज धर्म पै हरषि चढ़ावौं प्रान ॥ ६० ॥

गये दिवस अब बिभव के, तजि दै बिषय-बिलास ।
होय देस स्वाधीन कब, करि वा दिन की आस ॥ ६१ ॥

इन नैननि किन राखिये दुखित दूबरे दीन ।
कीजै निज बलि-दान दै दलित देस स्वाधीन ॥ ६२ ॥

काम न ऐहैं अंत ए, बादि बजावत गाल ।
वैही सीसु चढ़ायहैं, जे गुदरी के लाल ॥ ६३ ॥

रण-अंगन अरि-अंगना अंग-सुहाग सवाँरि ।
तनु की ज्वाल सिरावतीं ज्वाल-माल तनु धारि ॥ ६४ ॥

सहमि तमकि भाजत भजत, तुरत अधीर सुधीर ।
पीत अरुण परि जात मुख, लखि रण कादर बीर ॥ ६५ ॥

कहा मरोरत मूँछ उत बाँधि तुबक तरवार ।
सेवत जा दरबार कों नर्तक भाँड़ लबार ॥ ६६ ॥

छिन छाँड़त, छिन गहत क्यों, रहत न एकहु ढंग ।
पल-पल पलटत नीच तैं नित गिरगिट-ज्यौं रंग ॥ ६७ ॥

जीवन-नवलनिकुंज रमि जो चाहौ रस-पान ।
जाय छुड़ावौ प्रेम सों मृत्यु-मानिनी-मान ॥ ६८ ॥

देखतहीं रण-भूमि वै क्यों न जायँ छुपि गेह ।
चित्र-लिखित लखि खड्ग जब थरथर काँपति देह ॥ ६९ ॥

भये न जो पढ़ि सत्यब्रत, सबल, सूर स्वाधीन ।
तौ विद्या लगि बादि धन, समय, शक्ति व्यय कीन ॥ ७० ॥

देखि सती-ब्रत-भंगहूँ आवत जाहि न रोष ।
ता कादर के कदन में मानिय नैक न दोष ॥ ७१ ॥

कीजै किन कीरति अचल, दीजै दुकृत बिडारि ।
क्यों न बीर-सुर-सरित में लीजै अंग पखारि ॥ ७२ ॥

कियौ राज सुर-राज ज्यौं, जहाँ यवन-सम्राट ।
सो वह दिल्ली हाट-लौं लई लूटि ब्रज-जाट* ॥ ७३ ॥

स्वर्ण-दान-हित कर्ण तूँ, केशवराय-अनन्य !
अबुलफ़ज़ल-करि-केहरी बीरसिंह† नृप धन्य ॥ ७४ ॥

नहिँ बद्दलु दल-बलु यहै, तड़ित न यह किरपान ।
नहिँ घन गाजत, गहगहे बाजत तुमुल-निसान‡ ॥ ७५ ॥

---

* भरतपुराधिप वीर-वर सूरजमल के पुत्र महाराज जवाहरसिंहजी द्वारा की हुई दिल्ली की लूट ।

† देखो टिप्पणी—तीसरा शतक, ६८ दोहा ।

‡ निम्नलिखित कवित्त के आधार पर—

बद्दल न होहिँ दल दच्छिन घमंड माहिँ,
घटाहू न होहिँ दल सिवाजी हँकारी के ।
दामिनी दमंक नाहिँ खुले खग्ग बीरन के,
बीर सिर छाप लखु तीजा असवारी के ॥
देखि-देखि मुग़लों की हरमैं भवन त्यागैं,
उझकि-उझकि उठैं बहत बयारी के ।
दिल्ली मतिभूली कहै बात घन घोर घोर,
बाजत नगारे जे सितारे गढ़-धारी के ॥ —भूषण

है पानिप तरवार कौ कौन उतारनहार ?
कौन उखारनहार है मरद-मूँछ कौ बार ? ॥ ७६ ॥
कलपावत कब तें हमैं धारि निठुरता-रूप ।
करुनाघन ! तुमहूँ भये आजु-कालि के भूप ! ॥ ७७ ॥
बिनु अंगनु कीनो हमैं, बिनुबल, बिनुहथयार ।
क्यों, निरदई दई ! दई बिपत एकई बार ॥ ७८ ॥
कटत खटाखट मुंड, त्यौं पटत रुंड पर रुंड ।
जहँ-तहँ हल्दीघाट पै लहरत लोहित-कुंड ॥ ७९ ॥
तौलगिही तूँ गरजि लै, गो-घातक ! बनमाहिँ ।
जौलगि मत्त मृगेन्द्र ! यह दबी लबलबी नाहिँ ॥ ८० ॥
पेशकब्ज, दृढ़ गुर्ज त्यौं बरछी, बाँक, कटार ।
हैं आभूषण बीर के तुबक, तीर, तरवार ॥ ८१ ॥
आँजि ओज-आँजनु दृगनि दई अनी बिचलाय ।
क्यों न तोहि, रण-बाँकुरे ! मसक गयन्द लखाय ॥ ८२ ॥
आसव एतो ओज कौ लीजै दृगनि उड़ेलि ।
मर्दि मीजिये मसक-ज्यौं रिपु-गयन्दहूँ पेलि ॥ ८३ ॥
सरनागत, मद-मत्त, तिय, क्लीब, निरस्त्र, अनाथ ।
इन्हैं घालिबे नहिँ कबौं मरद उठायौ हाथ ॥ ८४ ॥
हृदय-जीत-सी जीत नहिँ, भरम-भीति-सी-भीति ।
धर्म-नीति-सी नीति नहिँ, कृष्ण-प्रीति-सी प्रीति ॥ ८५ ॥

रण-अन्हान सों नहिँ तुलै सहस्रतीर्थ कौ न्हान ।
अभय-दान पै वारिये अमित यज्ञ कौ दान ॥ ८६ ॥
लिखे हमारे भाल पै अंक न अर्थ-अधीन ।
ज्यौं पानीपत पै भये हम पानी-पत-हीन ॥ ८७ ॥
'आये रण में जूझिकैं लला लाड़िले काम ।'
सुनि, छाती फूली, फटी, गई जननि सुर-धाम ॥ ८८ ॥
सुमन-सेज सर-सेजही, रण, रति-रीति रसाल ।
सुभट-लाल-हित हित-रँगी रमण-बाल करबाल ॥ ८९ ॥
कारण कहुँ, कारज कहूँ, अचरज कहत बनै न ।
असि तौ पीवति रकत, पै होत रकत तुव नैन ॥ ९० ॥
वर्म चर्म असि तून धनु सजे सूर सरदार ।
वह सब मुख मेचक किये वा दिन बिन हथयार ॥ ९१ ॥
मुक्ति-हेतु इक करत तप, अपर दान, मख, ध्यान ।
पै छिति छत्रिहि छाँड़ि रण नाहिँन साधन आन ॥ ९२ ॥
सुने कवित पजनेस-कृत जिनसों मंजुल मन्द ।
तिन श्रवननु सों अब कहा सुनिहौ भूषण-छन्द ? ॥ ९३ ॥
कथनी तौ औरै कछू, पै करनी कछु और ।
हम-से कादर कूरहूँ बनत सूर-सिरमौर ॥ ९४ ॥
लाल धर्म, यस-कौमुदी, कृष्ण-रूप-रुचि-राग ।
होउ हरे ! संगमु सदा यहै सुहाग-प्रयाग ॥ ९५ ॥

मन-मोहिनि त्वै सतसई हिरनी-सी सुकुमारि ।
कहा रिझैहै रसिक-मन यह सिंहिनि भयकारि ॥ ९६ ॥
नहिं रस या सतसई में, नाहिं सुपद-लालित्य ।
भूषितहूँ दूषित भयौ परसि याहि साहित्य ॥ ९७ ॥
वै कुरंगिनी सतसई, सबै राखिहैं लालि ।
को लैहे सिर बिपत मो भूखी बाघिन पालि ॥ ९८ ॥
उर-प्रेरक श्रीहरि भये, भई प्रगटि लाहौर ।
सतसइया पूरन भई पदुमावती* सुठौर ॥ ९९ ॥
चैत-सुदी-सुभ-पंचमी, बेद सिद्धि निधि इन्दु ।
करी समापत सतसई हरी सुमिरि गोविन्दु ॥१००॥

* पन्ना नगरी का प्राचीन नाम । परिणामी पंथ के तो पन्ना को आज भी 'पद्मावती' पुरी कहते हैं ।